आचार्य कुन्दकुन्द द्विसहस्राब्दि-समारोह के
पुण्य-प्रसंग पर प्रकाशित

प्रकाशक

राजीव, रश्मि, रत्ना, राजेश
महाजन टोली न० 2, आरा (बिहार)

पुस्तक-प्राप्ति का पता

रत्नासागर
प्राच्य भारती प्रकाशन
महाजन टोली न० 2, आरा—802301 (बिहार)

प्रथम संस्करण, जुलाई, 1989

मूल्य : 16 00 रुपए मात्र

मुद्रक :
अरिहन्ता प्रिंटर्स,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

सर्वोदय एव समन्वय के पुण्य-प्रतीक,

सरस्वती के वरद पुत्र,

एकान्तमूक-साधको के लिए प्रेरणा के अजस्र-स्रोत,

युगप्रधान,

आचार्यश्री विद्यानन्द जी महाराज की सेवा मे

सादर समर्पित।

प्रकाशकीय

भारतीय सस्कृति के निर्माण मे तीर्थंकरो का योगदान अविस्मरणीय है। पूर्व-पाषाणयुगीन ऋषभदेव ने (सुप्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता एच० डी० सकलिया के अनुसार) असि (राष्ट्ररक्षा), मसि (लिपि एव भाषा का आविष्कार), कृषि, शिल्प, सेवा (चिकित्सा एव पीडित प्राणियो की यथोचित सेवा-शुश्रूषा), एव वाणिज्य की सर्वप्रथम शिक्षा प्रदान की। तत्पश्चात् हमारे आचार्यो ने निरन्तर ही ज्ञान-विज्ञान की परम्परा को विकसित कर उसे आगे बढ़ाया है।

ऋषभदेव ने स्वस्थ एव समृद्ध समाज तथा राष्ट्र-निर्माण के लिए व्यक्ति की सच्चरित्रता को प्रधान आधार बताया, जिसमे इन्द्रिय-दमन एव आत्मानुशासन पर विशेष बल देने के कारण उसे जैनधर्म की सज्ञा प्रदान की गई। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एव अपरिग्रह की नीव पर आधारित होने और प्राणिमात्र का कल्याणमित्र होने के कारण जैनधर्म को ईसा की दूसरी सदी मे 'सर्वोदय-धर्म' के रूप मे भी जाना गया, वर्तमान सदी मे जिससे गाधी, नेहरू, बिनोवा, जयप्रकाश आदि ने पर्याप्त प्रेरणाएँ ली।

कुन्दकुन्द उसी तीर्थंकर-परम्परा के महान् सन्त-साधक, ज्ञान-पुञ्ज एव महिमा-मण्डित पूर्व-परम्परा के सवाहक-आचार्य माने गए हैं। उनकी यह विशेषता है कि वे श्रमण-परम्परा के आद्य-लेखक भी हैं। समकालीन लोकप्रिय जन-भाषा (शौरसेनी प्राकृत) मे सर्वप्राणिहिताय, सर्वप्राणिसुखाय उन्होने अपनी प्रौढ-लेखनी से ऐसा अमूल्य ज्ञान-सागर प्रदान किया कि वह कभी भी किसी भी युग के लिए नित नवीन प्रेरणाएँ तथा निर्व्याज सुख एव शान्ति प्रदान करता रहेगा।

अध्यात्म, आचार, दर्शन, सस्कृति एव भाषा-विज्ञान के क्षेत्र मे तो कुन्दकुन्द का अद्भुत अनुदान है ही, भौतिक-जगत् के लिए भी उन्होंने

अपनी अध्यात्म-साधना की प्रयोगशाला मे बैठकर जो चिन्तन प्रस्तुत किया, वह भी अभूतपूर्व माना जायेगा। जीव (Soul), पुद्गल (Matter), धर्म (Medium of Motion), अधर्म (Medium of Rest), आकाश (Space) एव काल (Time) का उन्होने जिस प्रकार सोदाहरण एव सुस्पष्ट विश्लेषण 2000 वर्ष पूर्व कर दिया था, वह आज के विज्ञान-जगत् के लिए एक अद्‌भुत चमत्कारी घटना है। आधुनिक वैज्ञानिको को अपनी खर्चीली प्रयोगशालाओ मे प्रयोग करते-करते सदियाँ बीत जायेंगी, फिर भी कुछ भौतिक-रहस्यो को वे शायद ही कुन्दकुन्द के समकक्ष सिद्ध कर सकेंगे।

महान् शक्ति-पुञ्ज पुद्‌गल-परमाणु की नखरेबाजी तथा कलाबाजी जगप्रसिद्ध है। अपनी अति-सूक्ष्मता के कारण वह सर्वथा अदृश्य, पकड से दूर तथा विश्व की अपरिमित-शक्ति के परिग्रह का भारवाही होने के कारण युगो-युगो से वह ससार के वैज्ञानिको को भूल-भुलैयो मे भटकाता रहा है। किन्तु वनवासी प्राचीन-आचार्यों ने अपनी कठोर-साधनाओ के बल पर अपने दिव्य ज्ञान मे उसे देखा, परखा और सतत साधना के बल पर अध्यात्म-योग की प्रयोगशालाओ मे बैठकर उसके यथार्थ रूप को प्रकाशित भी किया है। आधुनिक भौतिक-जगत् ने उसकी अचिन्त्य-शक्ति का कभी-कभी तो सदुपयोग और कभी-कभी सहारक दुरुपयोग किया है।

कुन्दकुन्द ने उसे 'अतमज्झविभागहीणा' एव अविभागी घोषित किया था, जिसका समर्थन आधुनिक भौतिक विज्ञान ने भी यद्यपि कर दिया है, फिर भी कोटि-कोटि मुद्राओ के व्यय से भौतिक-जगत्, आज जिस 'षट्‌कोणी क्वार्क-मॉडल' (Quark Model) की असफल खोज मे लगा हुआ है, कुन्दकुन्द ने उसे दो हजार वर्ष पूर्व ही विश्लेषित कर दिया था। दुर्भाग्य यह है कि कुन्दकुन्द को अपना माननेवाले समाज को कुन्दकुन्द की रचनाओ के अध्ययन का न तो शौक है और न तत्त्व-जिज्ञासा ही। अत उनके अन्वेषणो से ससार परिचित नही हो पाता। अपने गौरव-पुत्रो पर अभिमान करने की मानो उसमे सामर्थ्य ही नही है। जैनेतर समाजें भी प्राकृत, सस्कृत के जैन-साहित्य को शुद्ध सम्प्रदायवादी मानकर युगो-युगो से उसकी उपेक्षा करती आ रही है। इन कारणो से भारतीय सस्कृति का एक प्रमुख प्रकाशस्तम्भ जैन-साहित्य धूमिल जैसा होता जा रहा है।

आवश्यकता इस बात की है कि युगो-युगो से लिखित सस्कृत एव प्राकृत के जैन-साहित्य मे वर्णित 'द्रव्य-व्यवस्था' वाले अशो का एक साथ सकलन हो तथा उनका विश्व की प्रमुख-भाषाओ मे अनुवाद कराकर विश्व-प्रसिद्ध वैज्ञानिको को भेंटस्वरूप भेजा जाय, जिससे वैज्ञानिक-गण अपने अन्वेषणो के क्रम मे इस सामग्री का भी सदुपयोग कर सकें।

हम चारो वहिन-भाई ऐसे माता-पिता की सन्ताने हैं, जिन्हे अपने बचपन मे ही साहित्य एवं श्रमण-सस्कृति का पूर्ण वातावरण मिला है। उनके विशाल ग्रन्थागार के बीच बैठकर भले ही हम सस्कृत एव हिन्दी साहित्य तथा दर्शन-शास्त्र के अध्येयता न बन सके हो, फिर भी उसके बीच बैठकर पढे-लिखे, लडे-झगडे एव खेले-कूदे हैं। ज्ञान-पिपासु भी बनें। उसी के मध्य हम लोग सवेदनशील भी बन सके। ज्ञान-पिपासु के इसी सस्कार के साथ हम लोगो ने फिजिक्स, गणित, कम्प्यूटर-विज्ञान की अन्तिम परीक्षाओ मे सर्वोच्चता भी प्राप्त की और अब भले ही विज्ञान-विषय होने के नाते हमारा रास्ता श्रमण सस्कृति के अध्ययन से पृथक् हो गया, फिर भी हमारे माता-पिता द्वारा प्रदत्त श्रमण-सस्कार हमारे कर्मक्षेत्र के लिए निरन्तर पाथेय बने रहे और दिल्ली के चकचौंधया देने वाले विलासितापूर्ण वातावरण मे भी उन सस्कारो ने हमे इधर उधर न भटकाकर श्रमण-सस्कृति के गौरव से निरन्तर जोडे रखा।

विश्वविख्यात वैज्ञानिक प्रो० डॉ० D S Kothari, आदि के जैन-विज्ञान सम्बन्धी निबन्धो तथा परमपूज्य आचार्य विद्यानन्द जी, आचार्य तुलसीगणि एव नगराज जी के समय-समय पर दिल्ली मे हुए भाषणो से भी हम लोगो को बडी प्रेरणाऐं मिलती रही हैं अत हमारी इच्छा थी कि उस दिशा मे हम लोग भी कुछ कार्य करें। किन्तु अपनी अध्ययन एव शोध सम्बन्धी अनेक व्यस्तताओ के चलते तथा प्राच्य-विद्या का व्यवस्थित ज्ञान नही होने से हम लोग कुछ नही कर सके, इसका हार्दिक खेद रहेगा। किन्तु भविष्य मे हम लोग कुछ ठोस कार्य कर सकें, ऐसी दृढ इच्छा है।

इसी बीच, इस सदी के गौरव-शिखर अध्यात्म-योगी पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी का एक सन्देश हमे पढने को मिला, जिसमे उन्होंने

1988-89 को आचार्य कुन्दकुन्द की द्विसहस्राब्दि-समारोह-वर्ष के रूप मे मनाने की प्रेरणा दी।

साथ ही, 16 अक्टूबर 1988 को दिल्ली के फिक्की सभागार मे समाज के अग्रणी नेता आदरणीय साहू श्रेयासप्रसाद जी, साहू अशोक कुमार जी, साहू रमेशचन्द्र जी, श्री रमेशचन्द्र जी (P S J), श्री अक्षय कुमार जी, श्री रतनलाल जी गगवाल, श्री बाबूलाल जी पाटोदी, सतीश जी प्रभृति ने समाज को दिशादान देने हेतु कुन्दकुन्द द्विसहस्राब्दि-समोराह वर्ष के उद्‌घाटन का विराट आयोजन किया, जिसमे उपराष्ट्रपति माननीय डॉ० शकरदयाल शर्मा एव अन्य गण्यमान विद्वानो के विचारोत्तेजक भाषण हुए। उन विचारो ने हमे अत्यधिक प्रभावित किया।

निरपेक्षवृत्ति से साहित्य-साधना मे सलग्न अपने मम्मी-पापा से हम लोगो ने निवेदन किया कि कुन्दकुन्द पर वे एक ऐसी पुस्तिका लिख दें, जिसमे कुन्दकुन्द के बहुमुखी व्यक्तित्व की झांकी हो तथा जो इस भ्रम को दूर कर सके कि 'कुन्दकुन्द जैनेतरो के लिए नही, वे तो केवल जैनियो के ही आचार्य हैं तथा उनका साहित्य केवल जैन-मन्दिरो मे ही रखने योग्य है।'

हमारी दृष्टि मे तो कुन्दकुन्द सभी के कल्याणमित्र हैं। वे प्राणीमात्र के परमहितैषी हैं। वे राष्ट्रीय ही नही, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के महान् विचारक, दार्शनिक, सन्त, योगी-साधक, लेखक एव पथ-प्रदर्शक हैं। उन्हे जाति एव सम्प्रदाय के घेरे मे बन्द रखना, उनके तेजस्वी व्यक्तित्व की अवमानना होगी। इस पुस्तक का लेखन भी उक्त विचारो के आलोक मे ही किया गया है। बहुत सम्भव है कि विद्वज्जनो के लिए यह पुस्तक सामान्य लगे, किन्तु सामान्य-जनता के लिए यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसा हमारा परम विश्वास है।

यह हार्दिक प्रसन्नता का विषय है कि हमारे अध्ययन-काल मे सन् 1980-81 से हमारे मम्मी-पापा ने जो मासिक वृत्तियाँ हमारे लिए बाँध रखी थी, उसमे से क्रमश: बचत की राशि से इस पुस्तिका का प्रकाशन हो रहा है।

आरा जैसी साधन विहीन भूमि मे, जहाँ बिजली एव पानी की निरन्तर अस्थिरता बनी रहती है, वहाँ मोमबत्ती के प्रकाश मे इस पुस्तक का

अधिकाश भाग लिखा गया है। अन्य पारिवारिक एव सामाजिक कार्यों से उत्पन्न थकावट पर ध्यान दिए विना ही लेखको ने अल्पकाल मे यह पुस्तिका तैयार की है। इसमे पाण्डित्य-प्रदर्शन नही, वल्कि कुन्दकुन्द की रचनाओ का सार्वजनीन एव सार्वभौमिक मूल्याकन सीधी-सादी सरल भाषा मे प्रस्तुत किया गया है।

हमारे इस लघु प्रकाशन से जिज्ञासुओ को यदि रचमात्र भी विचारोत्तेजना मिल सके तथा नवीन पीढी यदि अपनी दैनिक बचत के सदुपयोग तथा जिनवाणी-सेवा से परिवार, पडौसी, रिश्तेदार अथवा सुपरिचितो को सार्वजनिक कार्यों के लिए प्रेरणा दे सके, तो इससे हमे भी भविष्य मे कुछ और स रचनात्मक कार्य करने-कराने का उत्साह मिल सकेगा।

इस पुस्तक के प्रूफसशोधन एव मुद्रणादि की व्यवस्था मे डॉ० गुलाब चन्द्र जैन (भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली) का हमे वहुत सहयोग मिला है। अत हम उनके प्रति विशेष आभार व्यक्त करते हैं।

श्रद्धावनत,

महाजन टोली न० 2,
आरा (विहार)
17-7-89

—राजीव M Sc, M Phill
(Gold Medalist), I O F S.
—रश्मि B E (Hons)
(Computer Sc)
—रत्नासागर M Sc M Phill (D U)
यू० जी० सी० रिसर्च-फैलो
—राजेश पंकज M Sc LL B (Prev)
(D U)

आत्म-निवेदन

बचपन मे अपने पुत्र-पुत्रियो की शरारतो से भरी तोतली वाणी तथा बाल्यकालोचित लीलाएँ हमारी साहित्यिक-यात्रा मे रग-बिरंगे, हरे-भरे उपवनो की सी ताजगी प्रदान करती रही हैं। मौलिक चिन्तनशीलता, साधनहीनो के प्रति दयालुता तथा श्रमण-सस्कृति के प्रति सहज श्रद्धाभक्ति के सस्कार और पारिवारिक आर्थिक-विपन्नता के प्रति सहज सवेदनशीलता की भावना भी उनमे प्रारम्भ से ही बनी। उनके सुसस्कारो तथा नियमित अध्ययन एव कठोर-परिश्रम, स्वतन्त्र-चिन्तन तथा ज्ञान-पिपासा की शान्ति हेतु उनका अपना अध्यवसाय एव प्रगति की अदम्य लालसा ने हमे विविध विपन्नताओ के बीच भी थकान का अनुभव नही होने दिया।

उन्हे दिल्ली एव इलाहाबाद जैसे महँगे शहरो मे उच्चशिक्षा दिलाने का दुस्साहस हमने किया। लगभग आठ-नौ वर्षो तक उनके अध्ययन की व्यवस्था किन-किन कठिनाइयो के बीच की गई इसके अनेक रोचक एव प्रेरक सस्मरण हैं। किन्तु उनका उतना महत्त्व नही, जितना इसका कि उन्होने हमसे छिपाकर अपनी मासिक-वृत्तियो मे से कटौती की और उसे उसी अदृश्य सत्कार्य मे सदुपयोग करने का सकल्प किया। प्रस्तुत लघु पुस्तिका का प्रकाशन उसी का सुपरिणाम है। जैन-परिवारो के उन्ननीपु छात्रो के लिए यदि इस उदाहरण से कुछ प्रेरणा मिल सके, तो उससे समाज एव साहित्य का काफी काम हो सकता है।

अपने बच्चो के अनुरोधो को हमने कभी टाला नही। उसी क्रम मे कुन्दकुन्द पर एक लघु-पुस्तिका लिखने सम्बन्धी उनके अनुरोध को भी हमने टाला नही और हम लोगो ने अल्पकाल मे भी, जो जितना सम्भव था, उसे लिखकर एक ओर अपने बच्चो का मनोबल भी बढाने का प्रयत्न किया है, तो दूसरी ओर भारतीय सस्कृति-सागर के मन्थन के लिए

मन्दराचल, ज्ञान-विज्ञान के महामेरु, श्रमण-सस्कृति के मेरुदण्ड, युगप्रधान आचार्य कुन्दकुन्द के प्रति द्विसहस्राब्दि-समारोह के क्रम मे उनके चरणो मे अपने श्रद्धा-सुमन भी अर्पित करने का प्रयत्न किया है।

प्रस्तुत रचना के लेखन-प्रसग मे हम लोगो ने जिन ख्यातिप्राप्त विद्वानो द्वारा सम्पादित कुन्दकुन्दाचार्य के विविधि ग्रन्थो की सहायता ली है, उनके प्रति हम सादर आभार व्यक्त करते हैं।

यदि हमारे इस लघु प्रयत्न से जन सामान्य को कुछ भी लाभ हुआ, तो वही हमारे श्रम का बहुमूल्य पुरस्कार होगा।

—लेखक द्वय

महाजन टोली न० 2
आरा (बिहार)
18-7-89

विषय-सूची

सन्नन्दिसंघसुरवर्त्मदिवाकरोऽभू-
च्छ्रीकुन्दकुन्द इतिनाम मुनीश्वरोऽसौ।
जीयात् स वै विहितशास्त्रसुधारसेन,
मिथ्याभुजंगगरलं जगत' प्रणष्टम् ॥
—धर्मसग्रह श्रावकाचार (मेधावी)

वन्द्यो विभुर्भुवि न कैरिह कौण्डकुन्द ,
कुन्दप्रभाप्रणयिकीर्त्तिविभूषिताश॰।
यश्चारुचारणकराम्बुजचञ्चरीक-
श्चक्रे श्रुतस्य भरते प्रयत प्रतिष्ठाम् ॥
—श्रवणबेलगोल शिलालेख स॰ 54/67

1. युग-प्रधान आचार्य कुन्दकुन्द

आद्य सारस्वताचार्य

प्राचीन श्रमण-परम्परा के विकास मे आचार्य कुन्दकुन्द का नाम अहर्निश स्मरणीय तथा सारस्वताचार्यों मे प्रधान माना गया है। उनका महत्त्व इसमे नही कि वे मन्त्र-तन्त्रवादी थे और चमत्कारो के वल पर वे भौतिक सुखो को प्रदान करा सकते थे। इसमे भी उनका महत्त्व नही कि वे शस्त्रास्त्रो अथवा किसी सशक्त राजनीति एव पराक्रम के वल पर अपनी या अपने अनुयायियो की भौतिक महत्त्वाकाक्षाओ को पूरा कर सकते थे। इसमे भी उनका महत्त्व नही कि उन्होंने आकाश-गमन से पूर्व-विदेह की यात्रा कर सभी को चमत्कृत किया था। उनका वास्तविक महत्त्व तो इसमे है कि जड-भौतिक सुखो को क्षणिक एव हेय समझकर उन्होंने अपनी उद्दाम-यौवन से तप्त कचन-काया का प्रखर तपस्या मे भरपूर उपयोग किया और अपनी चित्तवृत्ति को केन्द्रित कर आत्मशक्ति का सचय किया तथा पर-पीडा का अनुभव कर उनके भवताप को मिटाने का अथक प्रयत्न किया।

उन्होने अपनी अध्यात्म-योग-शक्ति के उस अविरल स्रोत को प्रवाहित किया, जो शाश्वत-सुख का जनक है और जिसने अध्यात्म के क्षेत्र मे अपनी मौलिक पहिचान वनाई। यही कारण है कि तीर्थंकर महावीर एव उनके प्रधान गणधर गौतमस्वामी के वाद, आत्म-विज्ञान, कर्मविज्ञान एव अध्यात्म-विद्या के क्षेत्र मे वे एक अमिट शिलालेख के रूप मे पृथ्वी-मण्डल पर अवतरित हुए। श्रमण-सस्कृति के इतिहास मे वे युगप्रवर्तक, युगप्रधान तथा आद्य सारस्वताचार्य के रूप मे प्रसिद्ध है।

विस्मृति के घेरे मे

परोपकारी महापुरुष, विशेषतया आध्यात्मिक सन्त, लोकख्याति से प्राय दूर ही रहते आए हैं। यही कारण है कि उनके विशिष्ट कार्यों को तो सभी जानते हैं किन्तु उनके सर्वांगीण जीवन-वृत्त को जानने के साधन अज्ञात-जैसे ही रह जाते हैं। इस श्रेणी मे केवल कुन्दकुन्द ही नही, गुणधर, धरसेन, नागहस्ति, उच्चारणाचार्य, वट्टकेर, शिवार्य, कार्तिकेय, उमास्वाति, समन्तभद्र प्रभृति श्रेष्ठ विचारको के नाम भी गिनाए जा सकते हैं। यही क्यो, महर्षि वाल्मीकि, व्यास, भास, शूद्रक, कालिदास, कबीर, सूर, जायमी आदि की भी वही स्थिति है। हम इन सभी के निर्विवाद प्रामाणिक जीवन-वृत्तो से दीर्घकाल तक प्राय अनभिज्ञ ही रहे और सम्भवत आगे भी अनभिज्ञ ही रह जाते, किन्तु धन्यवाद है शोध-खोज की उस आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति को तथा उन शोधार्थी तपस्वी महामनीपियो को, जिन्होंने प्रकारान्तर से कुन्दकुन्द जैसे युगप्रधान महापुरुषो के जीवन-वृत्तो की जानकारी के उपाय भी खोज निकाले। ऐसे वैज्ञानिक उपायो के मूलाधार प्रायः निम्न प्रकार रहे हैं—

1 शिलालेखो, पट्टावलियो तथा ताम्र-पत्रो मे उपलब्ध साक्ष्य,
2 आचार्यों के साहित्य मे समकालीन विविध परिस्थितियो सम्बन्धी सन्दर्भ,
3 परवर्ती साहित्य मे उपलब्ध तद्विपयक सन्दर्भ, एव
4 टीकाकारो द्वारा अकित सूचनाएँ एव पुष्पिकाएँ।

कुन्दकुन्द साहित्य का सर्वप्रथम प्रकाशन

आचार्य कुन्दकुन्द का यद्यपि विशाल साहित्य उपलब्ध है, किन्तु उसमे उन्होंने अपना किमी भी प्रकार का परिचय नही दिया। दीर्घकाल तक स्वाध्यायप्रेमी उनकी 'समयसार' जैसी रससिक्त रचनाओ के अमृत-कुड मे डूबकर उनका परिचय प्राप्त करने के लिए अत्यन्त व्यग्र रहे। यह स्थिति सन् 1900 ई० के आसपास तक रही। उस समय तक कुन्दकुन्द का सम्पूर्ण साहित्य प्रकाशित नही हुआ था। उनके उपलब्ध हस्तलिखित ग्रन्थो का ही स्वाध्याय किया जाता था। युग की तीव्र माँग को देखकर-तथा

कुन्दकुन्द-साहित्य मे अध्यात्म एव काव्य का सौष्ठव देखकर बम्बई के प्रवासी (देवरी-सागर निवासी) श्री प० नाथूराम प्रेमी ने उनके साहित्य के प्रकाशन की सर्वप्रथम योजना बनाई तथा विविध स्रोतो से उनके जीवन-वृत्त को तैयार किया।

कुन्दकुन्द के काल की अविश्रान्त खोज

तत्पश्चात् प० जुगलकिशोर मुख्तार, डॉ० के० बी० पाठक, योरोपीय विद्वान् डॉ० हार्नले, प्रो० ए० चक्रवर्ती, प्रो० ए० एन० उपाध्ये, एव डॉ० हीरालाल जैन ने कुन्दकुन्द के समय पर गम्भीर खोजें की। इन विद्वानो ने कुन्दकुन्द के साहित्य के साथ-साथ गुणधराचार्य के गाथा-सूत्रो, यतिवृषभ के चूर्णि-सूत्रो एव उच्चारणाचार्य के उच्चारण-सूत्रो तथा आचार्य धरसेन की परम्परा मे हुए आचार्य पुष्पदन्त-भूतवलि के षट्खण्डागम का पारदर्शी अध्ययन तो किया ही, अन्य ऐतिहासिक साहित्य, जिसमे इन्द्रनन्दि तथा विबुध श्रीधर के श्रुतावतार, पल्लव, गग एव राष्ट्रकूट नरेशो के विविध शिलालेखो, ताम्रपत्रो, गुर्वावलियो, पट्टावलियो तथा परवर्त्ती आचार्यों और टीकाकारो द्वारा उल्लिखित सन्दर्भो एव पुष्पिकाओ आदि का तुलनात्मक गहन अध्ययन एव विश्लेषण भी किया और विविध ऊहापोहो के बाद उनका काल ईसा पूर्व प्रथम सदी से ईसा की तीसरी सदी के मध्य निर्धारित किया। किन्तु काल-निर्णय की यह स्थिति सन्तोषजनक सिद्ध नही हुई। क्योकि कुन्दकुन्द जैसे महापुरुषो की कालावधि निश्चित न हो, अथवा उनकी कालावधि को तीन सौ-चार सौ वर्षों के मध्य बताया जाए, यह स्थिति हास्यास्पद एव दयनीय-जैसी ही थी। इसका मुख्य कारण था, परस्पर मे विरोधी-साक्ष्यो की प्राप्ति। जैसे—

1 आचार्य कुन्दकुन्द के उल्लेखानुसार वे श्रुतकेवली भद्रबाहु के शिष्य थे।[1] (भद्रबाहु का समय ई० पू० 390 से ई० पू० 361 के लगभग माना गया है)।

---

1. सद्दवियारो हूओ भासासुत्तेसु ज जिण कहिय।
   सो तह कहिय णाय सीसेण य भद्दबाहुस्सा॥ बोधपाहुड-61

2 नन्दिसघ की पट्टावली एव अन्य शिलालेखों के अनुसार कुन्दकुन्द' का काल ई० पू० की प्रथम सदी का अन्तिम चरण माना गया।

काल-निर्णय—उक्त दोनो मतो मे से प्रथम मत का विशेप अध्ययन करने से यह स्पप्ट होता है कि भद्रबाहु कुन्दकुन्द के साक्षात् गुरु न थे। वे परम्परा-गुरु थे, इसलिए कुन्दकुन्द ने उन्हे 'गमक-गुरु' कहा है।[1] परम्परा से गुरु-शिष्य का सम्बन्ध सहस्रो वर्षों तक भी चल सकता है। जैसे कि आज के जैन-साधु भी कुन्दकुन्द को अपना गुरु मानते है और भविष्य मे भी उन्हे गुरु मानकर चलते रहेगे। इस कारण कुन्दकुन्द के काल-निर्णय मे उक्त प्रथम मत सहायक सिद्ध नही होता।

दूसरे मत के अनुसार नन्दिसघ की पट्टावली एव दक्षिण भारत के अनेक शिलालेखो के गम्भीर अध्ययन के निप्कर्प स्वरूप[2] कुन्दकुन्द के काल-निर्धारण के सन्दर्भ मे निम्न तथ्य सम्मुख आते हैं—

1 जन्मकाल—ई० पू० 108 के लगभग।
2 मुनि-दीक्षा काल (11 वर्प की आयु मे)—ई० पू० 97 से ई० पू० 64 के लगभग।
3 आचार्य-पद-प्राप्तिकाल एव कुल आचार्य-काल—ई० पू० 64 से ई० पू० 12 तक।
4 स्वर्गारोहण-काल—ई० पू० 12 के लगभग।
5 कुल आयुप्य—लगभग 96 वर्प।

इस प्रकार कुन्दकुन्द का काल ई० पू० प्रथम सदी का अन्तिम चरण सिद्ध होता है। अधिकाश विद्वानो ने इस मत का समर्थन किया है।

कुन्दकुन्द के विविध नाम

आचार्य कुन्दकुन्द ने स्वरचित 'बारस-अणुवेक्खा' नामक रचना मे

---

1 बारसअगवियाण चउदसपुव्वगविउलवित्थरण।
सुयणाणि भद्दबाहु गमयगुरु भयवयो जयउ॥ बोधपाहुड-62

2 विक्रमादित्य—(डॉ० राजवली पाण्डेय) पृ०-161

मे अपना नाम कुन्दकुन्द बतलाया है।[1] किन्तु कुन्दकुन्द कृत पाहुड-साहित्य के टीकाकार श्रुतसागर सूरि (15वी सदी) ने अपनी टीका की पुष्पिकाओ मे उनके 5 नाम बतलाए है। उस उल्लेख से विदित होता है कि आचार्य कुन्दकुन्द के अन्य नाम पद्मनन्दि, वक्रग्रीव, एलाचार्य एव गृद्धपिच्छ भी थे।[2]

श्रुतसागर के उल्लेख का समर्थन विजयनगर के शक स० 1307 (सन् 1229 ई०) के एक शिलालेख से भी होता है।[3]

यह आश्चर्य का विषय है कि श्रुतसागरसूरि को छोडकर कुन्दकुन्द के अन्य टीकाकारो ने उनके कुन्दकुन्द अथवा पद्मनन्दि नाम तो बतलाए हैं किन्तु अन्य नामो की कोई चर्चा नही की। आचार्य जयसेन ने उन्हें 'पद्मनन्दि' इस नाम से स्मरण करते हुए लिखा है कि "जिन्होने अपने बुद्धिरूपी सिर से महान् तत्त्वो से भरे हुए प्रस्तुत 'समयप्राभृत' (समयसार) रूपी पर्वत को उठाकर भव्य-जीवो को समर्पित कर दिया, वे महर्षि पद्मनन्दि (सदा) जयवन्त रहे।"[4]

इन्द्रनन्दि ने भी अपने श्रुतावतार मे उन्हे कौण्डकुन्दपुर का पद्मनन्दि

---

1 इदि णिच्छयववहार ज भणिय कुन्दकुन्दमुणिणाहे।
जो भावइ सुद्धमणो सो पावइ परमणिव्वाण ॥गाथा 91॥

2 श्रीमत्पद्मनन्दिकुन्दकुन्दाचार्यवक्रग्रीवाचार्यैलाचार्यगृद्धपिच्छाचार्य-नाम पचकविराजितेन (श्रुतसागर कृत षट्प्राभृत-टीका की पुष्पिकायें, वाराणसी 1918 ई०)

3 आचार्य कुन्दकुन्दाख्यो वक्रग्रीवो महामुनि।
एलाचार्यो गृद्धपिच्छ इति तन्नाम पचधा॥

4 जयउ रिसपउमणदी जेण महातच्च पाहुणस्सेलो।
बुद्धिसिरेणुद्धरियो समप्पियो भव्वलोयस्स॥
(समयप्राभृत—सनातन जैन ग्रन्थमाला, पृ० 212)

कहा है[1] और बतलाया है कि मुनि पद्मनन्दि को 'कसायपाहुड' एव 'पट्-खण्डागम' कौण्डकुन्दपुर मे प्राप्त हुए[2] वहाँ उन्होंने 'पट्खण्डागम' के प्रथम तीन खण्डो पर 60,000 श्लोक प्रमाण 'परिकर्म' नामक ग्रन्थ लिखा।[3]

कुन्दकुन्द एव पद्मनन्दि की अभिन्नता श्रवणवेलगोल के शिलालेख स० 9[4], 10[5], 40[6], 42[7], 43[8], 47[9], एव 50[10] तथा देवसेनाचार्य कृत 'दर्शनसार'[11] से भी सिद्ध होती है। इन दोनो नामो के अतिरिक्त कुन्दकुन्द के अन्य नामो की अभिन्नता सिद्ध करने के लिए सशक्त प्रमाणो का अभाव है।

गुरु-परम्परा

अभी तक के अन्वेषण-क्रम मे आचार्य कुन्दकुन्द के तीन गुरुओ के नाम सम्मुख आए है—(1) श्रुतकेवली भद्रवाहु, (2) कुमारनन्दि सिद्धान्तदेव एव (3) जिनचन्द्र।

(1) उक्त गुरुओ मे से श्रुतकेवली भद्रवाहु को कुन्दकुन्द ने स्वय ही गमक गुरु[12] अर्थात् परम्परा-गुरु माना है। जैसा कि पूव मे कहा का चुका है, इन दोनो मे लगभग 3C0 से कुछ अधिक वर्षों का अन्तर है। अत वे साक्षात्-गुरु की कोटि मे नही आ सकते।

(2) सुप्रसिद्ध टीकाकार जयसेन[13] तथा ब्रह्मदेव[14] ने कुन्दकुन्द को कुमारनन्दि सिद्धान्तदेव का शिष्य कहा है। मथूरा के उत्खनन मे एक शिलालेख मिला है, जिसमे उन्हे उच्चनागर शाखा मे सम्बद्ध वताया गया है। यह हुविष्क वर्प 87 का माना गया है। किन्तु इसके अन्त परीक्षण के

1-3 देखिए, नन्दिसघ-पट्टावली, श्लोक स० 160-161 (समयप्राभृत, भूमिका, पृ० 1)

4-10 दे०, जैन शिलालेख सग्रह, प्र० भाग (माणिकचन्द्र सीरीज)

11 दर्शनसार—गाथा स० 43

12 वोधपाहुड—गाथा-62

13 समयप्राभृत—भूमिका, पृ० 4

14 पचास्तिकाय की ब्रह्मदेव (12 वी सदी) टीका की उत्थानिका

निष्कर्षस्वरूप कुन्दकुन्द से उसका कोई भी सम्बन्ध नही बैठता, क्योकि उच्चनागर की उस शाखा से कुन्दकुन्द का कभी कोई सम्बन्ध नही रहा।

(3) नन्दिसघ की पट्टावली के अनुसार कुन्दकुन्द के गुरु का नाम जिनचन्द्र था[1] क्योकि उसमे आचार्य माघनन्दि, जिनचन्द्र एव कुन्दकुन्द के नाम क्रमश उपलब्ध होते है। उक्त पट्टावली के अनुसार आचार्य जिनचन्द्र का आचार्य-काल वि० स० 49 तक रहा है। अत यह गुरु-शिष्य सम्बन्ध तर्कसगत सिद्ध होता है।

जन्म-स्थल

जैसा कि पूर्व मे सकेत किया जा चुका है कि आचार्य कुन्दकुन्द का जीवन-वृत्त या उसके बीज-सूत्र उनके स्वय के साहित्य मे अनुपलब्ध हैं, किन्तु पश्चाद्वर्त्ती कुछ कथाकोषो मे उनका जीवन-परिचय अकित किया गया है, जो सक्षेप मे निम्न प्रकार है—

मालवदेश के वारापुर नाम के नगर मे कुन्दश्रेष्ठी नाम का एक सेठ रहता था, जिसकी पत्नी का नाम कुन्दलता था। उनके कुन्दकुन्द नाम का एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ, जो प्रखर-प्रतिभा-सम्पन्न था। जब वह ग्यारह वर्ष का था, तभी नगर मे जिनचन्द्र नाम के एक मुनिराज पधारे। उनके उपदेश मे प्रभावित होकर उसने दीक्षा ग्रहण कर ली। तैतीस वर्ष की आयु मे उसे आचार्यपद मिल गया।[2]

इन तथ्यो के अतिरिक्त उक्त कथाकोषो मे कुन्दकुन्द की पूर्व-विदेह-यात्रा, गिरनार-पर्वत पर श्वेताम्बरो से उनका वाद-विवाद तथा अपने शिष्य उमास्वाति को आचार्य-पद प्रदान कर स्वय सल्लेखनापूर्वक शरीर-त्याग करने की भी चर्चा की गई है।

---

1 जैन-सिद्धान्त भास्कर 1/4/78

2 ज्ञानप्रबोध (तात्या नेमिनाथ पागल कृत मराठी ग्रन्थ मे प्रकाशित कुन्दकुन्द चरित) —देखिए जै० हि० 10/6-7/383-84

निवास-स्थल

आचार्य कुन्दकुन्द आन्ध्र प्रदेश के निवासी थे—जन्म-स्थान सम्बन्धी पूर्वोक्त कथा रोचक है, इसमे सन्देह नही। किन्तु शोध-विद्वानो ने उसे अधिक महत्त्व नही दिया, क्योकि विविध प्रमाणो के आधार पर उनका विश्वास है कि कुन्दकुन्द दक्षिण-भारत के निवासी थे, उत्तर-भारत के नही। जबकि उक्त कथा पूर्णतया उत्तर-भारत से ही सम्बन्ध रखती है।

श्रवणवेलगोल के अनेक शिलालेखो तथा अन्य साक्ष्यो के आधार पर कुन्दकुन्द दक्षिण भारत के सिद्ध होते हैं। इन साक्ष्यो के अनुसार उनका जन्म-स्थल कौण्डकुन्दपुर था, जिसका अपरनाम कुरुमरई था। यह स्थान आन्ध्र प्रदेश के पेदथनाडु जिले मे पडता है। उनके पिता का नाम कर्मण्डु एव माता का नाम श्रीमती था। उन्हे जब दीर्घकाल तक सन्तति की प्राप्ति नही हुई, तब उन्होंने एक तपस्वी को कुछ दान दिया, जिसके फलस्वरूप उन्हे एक स्वस्थ एव सुन्दर पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। जन्मस्थल के नाम पर उसका नाम कोण्डकुन्द अथवा कुन्दकुन्द रखा गया।[1]

कुन्दकुन्द बचपन मे ही प्रखर-प्रतिभा सम्पन्न थे। उन्होने युवावस्था मे दीक्षा धारण की और शीघ्र ही आचार्य पद प्राप्त किया।

चमत्कार सम्बन्धी उल्लेख

महापुरुषो का चरित्र इतना निश्छल एव उनकी चित्तवृत्ति इतनी एकाग्र तथा शान्त होती है कि जगत् के प्राणी ही नही, बल्कि स्वर्ग के विक्रियाऋद्धिधारी देव भी उनकी ओर आकर्षित रहते हैं और उनकी सेवा के अवसर खोजते रहते है। महापुरुषो को सम्भवत इन सहज लौकिक आकर्षणो का भान भी नही रहता किन्तु भक्तगण इनकी चर्चाएँ विविध माध्यमो से करते रहे हैं।

---

1 दे० एपिग्राफिया कर्नाटिका, खण्ड 5 तथा पञ्चास्तिकायसार, भूमिका पृ० 5 (प्रो० ए० चक्रवर्ती, भारतीय ज्ञानपीठ, संस्करण-1975 ई०)

आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने साहित्य मे जब आत्म-परिचय ही प्रस्तुत नही किया, तब उनकी किसी चमत्कारी घटना के उल्लेख का प्रश्न ही नही उठता, किन्तु उनके परवर्ती कुछ लेखको ने उनके उल्लेख किए हैं। उनके अनुसार—

आचार्य कुन्दकुन्द ने अपनी कचन-सी काया को एकाग्रचित्तपूर्वक दुर्गम अटवियो, शून्य-गुफागृहो, सघन-वनो, तरुकोटरो, गिरिशिखरो, पर्वत-कन्दराओ तथा श्मशान-भूमियो मे रहते हुए कठोर तपस्या मे लगा दिया। फलस्वरूप उन्हे चारण-ऋद्धि की प्राप्ति हो गई और उसके प्रभाव मे वे पृथ्वी से चार अगुल-प्रमाण ऊपर अन्तरिक्ष मे चलने लगे।[1] किन्तु उन्होने इस ऋद्धि मे किसी भी प्रकार की अपनी भौतिक महत्त्वाकाक्षा को पूर्ण नही किया।

ज्ञान-पिपासा की तृप्ति हेतु पूर्व-विदेह की यात्रा

एक बार की घटना है कि वे स्वाध्याय कर रहे थे, तभी जिनागमो के कुछ तथ्य उन्हे अस्पष्ट रह गये और उनके समाधान के लिए उन्होने सीमन्धर स्वामी का स्मरण किया।

सीमन्धर स्वामी उस समय पूर्व-विदेह-क्षेत्र की पुण्डरीकिणी नगरी मे अपने समवसरण मे विराजमान थे। उनके ज्ञान मे आचार्य कुन्दकुन्द की समस्या झलक उठी और उसी समय उनकी दिव्यध्वनि मे 'सद्धर्मवृद्धिरस्तु' यह वाक्य निकला। इसे सुनकर किसी ने सीमन्धर स्वामी से यह प्रश्न किया कि "आपने यह आशीर्वाद किसके लिए दिया है?" तब उन्हे उत्तर मिला कि—"भरतक्षेत्र मे मुनि कुन्दकुन्द के मन मे कुछ शकाएँ उत्पन्न हो रही हैं। उन्होने मुझे नमस्कार किया है। अत. उन्ही के लिए हमारा यह आशीर्वाद गया है।"[2]

---

1 पञ्चास्तिकाय की जयसेनकृत टीका का प्रारम्भ तथा देवसेनकृत दर्शनसार।

2 जैन हितैषी 10/6-7/383-85

सीमन्धर स्वामी के समवसरण मे उपस्थिति

सीमन्धर स्वामी का उक्त वाक्य वहाँ पर उपस्थित दो भाइयो ने सुना। वे कुन्दकुन्द के पूर्व-जन्म के मित्र थे। अत वे वहाँ से चलकर कुन्दकुन्द के समीप आए और उन्हे सीमन्धर स्वामी का आशीर्वाद सुनाकर अपने विमान मे बैठाकर विदेह-क्षेत्र ले गए।[1]

विदेहक्षेत्र के मनुष्यो का शरीर पाँच सौ धनुष उन्नत था और कुन्दकुन्द का शरीर केवल साढे तीन हाथ ऊँचा। अत सीमन्धर के समवसरण मे लोग उन्हे कुतूहल की दृष्टि से देखने लगे। वहाँ पर शीघ्र ही उनका परिचय पवसे हो गया।[2]

कुन्दकुन्द विदेहक्षेत्र मे आठ दिन तक रहे। इस बीच मे उन्होने अपनी समस्त शकाओ का सीमन्धर स्वामी से समाधान पा लिया और विविध ज्ञान-विज्ञान सीखकर तथा एक नवीन ग्रन्थ, जिसमे राजनीति, मन्त्र-तन्त्र आदि विद्याओ की चर्चा थी, साथ मे लेते आए। किन्तु मार्ग मे वह ग्रन्थ कही गिरकर नष्ट हो गया।[3]

भरतक्षेत्र मे लौटकर कुन्दकन्द ने धर्म का प्रचार किया। लगभग 700 महिलाओ एव पुरुपो को उन्होने दीक्षा दी। उसके वाद उन्होने उमास्वामी को अपने पद पर प्रतिष्ठित कर तपस्या की और ध्यानस्थ योगी की अवस्था मे वे स्वर्ग सिधारे।[4]

पुण्डरीकिणी नगरी कहाँ है ?

प्रस्तुत कथानक वडा रोचक एव सरस है, इसमे सन्देह नही, किन्तु यथार्थता की अपेक्षा इसमे पौराणिकता अधिक है। क्योकि कलियुग मे, प्रखर तपस्या के होने पर भी, न तो चारणऋद्धि प्राप्त होने की सम्भावना है और न ही सशरीर गगनचारी होने की। हाँ, अधिक सम्भावना यही है कि पूर्वकाल मे वर्तमान विहार जव मगध एव विदेह मे विभक्त था, तव वर्तमान मिथिला तथा काश्मीर से लेकर वर्तमान अरुणाचल-प्रदेश तक एव हिमालय के सीमावर्ती राज्य—नेपाल, सिक्किम एव भूटान आदि विदेह-क्षेत्र के

1-4 जैन हितैषी 10/6-7

अन्तर्गत थे। यह तीर्थंकर महावीर का क्षेत्र था। इस कारण दीर्घकाल तक यह जैन-केन्द्र भी बना रहा। मिथिला भी तीर्थंकरो की जन्मभूमि थी। मौर्यवश के अन्तिम सम्राट् सम्प्रति ने जैनधर्म का सर्वत्र प्रचार किया। बहुत सम्भव है कि कुन्दकुन्द ने दक्षिण-भारत से चलकर उसी विदेह-क्षेत्र के प्रमुख जैन-केन्द्र पुण्डरीकिणी नगरी मे किन्ही आचार्य सीमन्धर स्वामी के दर्शन किए हो।

हमारी दृष्टि से उक्त पुण्डरीकिणी नगरी (जो कमलपुष्प-वाची है) वर्तमान पटना का पडरक नाम का नगर हो सकता है, जो आज भी अपने कमलपुष्पो तथा उसके कमलगट्टे एव मखानो के लिए प्रसिद्ध है। स्थिति जो भी रही हो, इस विषय पर पुनर्विचार की आवश्यकता है।

कुन्दकुन्द अपरनाम पद्मनन्दि की गिरनार-यात्रा

कुन्दकुन्द के जीवन की एक दूसरी चामत्कारिक घटना का भी उल्लेख है। उसके अनुसार वे जब विहार करते हुए गिरनार पर्वत पर पहुँचे तब वहाँ दिगम्बरो एव श्वेताम्बरो का मेला लगा हुआ था। उसी समय दोनो सम्प्रदायो मे अपने अपने मत को प्राचीन सिद्ध करने हेतु शास्त्रार्थ हो गया। उस समय कुन्दकुन्द ने अपनी तपस्या के प्रभाव से पर्वत पर स्थापित पाषाणी ब्राह्मी देवी को मुखर बना दिया था तथा उसके मुख से दिगम्बर सम्प्रदाय को प्राचीन घोषित करा दिया था। इस घटना का समर्थन आचार्य शुभचन्द्र ने भी अपने 'पाण्डवपुराण' मे किया है।

प० नाथूराम प्रेमी ने इस घटना की सम्भावना को तो स्वीकार किया है किन्तु उनके मत से इसका सम्बन्ध पद्मनन्दि अपर नाम कुन्दकुन्द मे नही, बल्कि इस घटना के समकक्ष किसी अन्य घटना का सम्बन्ध 12वी सदी के किसी अन्य पद्मनन्दि के साथ होना चाहिए।[1]

---

1 जैन हितैषी 10/6-7

2 कुन्दकुन्द साहित्य

वर्गीकरण

आचार्य कुन्दकुन्द के ज्ञात साहित्य को तीन श्रेणियो मे विभक्त किया जा सकता है—

1 निर्विवादात्मक उपलब्ध एव प्रकाशित साहित्य, जिसके अन्तर्गत निम्नलिखित ग्रन्थ आते हैं—

(1) पचत्थिकायसगहो (पञ्चास्तिकायसग्रह)
(2) पवयणसार (प्रवचनसार)
(3) समयसार अथवा समयपाहुड
(4) णियमसारो (नियमसार)
(5) अट्ठपाहुड (अष्टप्राभृत)
(6) बारस-अणुवेक्खा (द्वादश-अनुप्रेक्षा), एव
(7) दशभक्त्यादि सग्रह

2 विवादात्मक उपलब्ध एव प्रकाशित साहित्य, जिसके अन्तर्गत निम्नलिखित ग्रन्थ आते हैं—

(1) रयणसारो
(2) मूलाचार, एव
(3) कुरलकाव्य

3 विवादात्मक एव अनुपलब्ध साहित्य, जिसके अन्तर्गत षट्खण्डागम के प्रथम तीन खण्डो पर लिखित 'परिकर्म' नाम की टीका आती है। यह ग्रन्थ अद्यावधि अनुपलब्ध है।

कहा जाता है कि आचार्य कुन्दकुन्द ने भिन्न-भिन्न रुचि एव बुद्धि-वाले शिष्यो के हितार्थ अपने कुछ प्रमुख साहित्य का प्रणयन किया था। तदनुसार उनके साहित्य का विभाजन निम्न प्रकार किया जा सकता है—

(1) सक्षिप्त रुचि एव बुद्धिवाले शिष्यो के हितार्थ 'पञ्चास्तिकाय' का प्रणयन।

(2) मध्यमरुचि एव बुद्धिवाले शिष्यो के हितार्थ 'प्रवचनसार' का प्रणयन।

(3) विस्तृत रुचि एव बुद्धि-सम्पन्न शिष्यों के हितार्थ 'समयसार' अथवा 'समयपाहुड' का प्रणयन।

इनके अतिरिक्त—

(4) आत्मानुशासन एव अन्त करण के स्पष्टीकरण (Inside-out) के हेतु 'नियमसार' का प्रणयन।

(5) वृद्धिगत शिथिलाचारो का सिंहावलोकन कर एक सक्षम अनु-शास्ता के रूप मे लिखित अष्टपाहुड-साहित्य का प्रणयन।

(6) जैन तीर्थ-भूमियो की ऐतिहासिकता एव समकालीन भारतीय भूगोल के दिग्दर्शन हेतु निर्वाण-काण्ड का प्रणयन।

(7) राष्ट्रीय अखण्डता, भावात्मक एकता, अनुशासन तथा नैतिक एव आचारमूलक अन्य प्रकीर्णक साहित्य।

स्थानाभाव के कारण यहाँ उक्त साहित्य का विस्तृत परिचय देनासभव नही, किन्तु निबन्ध की समग्रता का ध्यान रखते हुए ग्रन्थो के वर्ण्य-विषय, उनके महत्त्व एव ग्रन्थ-विस्तार की सक्षिप्त चर्चा यहाँ की जा रही है—

कुन्दकुन्द साहित्य का सक्षिप्त परिचय

1 पंचत्थिकाय (पञ्चास्तिकाय)

प्रस्तुत ग्रन्थ मे षड्द्रव्य एव नौ पदार्थो का सरल एव सुबोध भाषा-शैली मे सक्षिप्त वर्णन किया गया है। वस्तुत जीवाजीवादि द्रव्यो एव पदार्थों का ज्ञान किए विना जैनधर्म-दर्शन के मर्म को समझ पाना अत्यन्त कठिन है। अत जैनधर्म-दर्शन रूपी भव्य महल मे प्रवेश करने के लिए इस ग्रन्थ को उसका प्रवेशद्वार (Gate-way) माना जाता है।

इस ग्रन्थ के टीकाकार आचार्य जयसेन ने अपनी तात्पर्यवृत्ति नाम की टीका मे वतलाया है कि पञ्चास्तिकाय का प्रणयन शिवकुमार महाराज जैसे सक्षेप रुचिवाले शिष्यो के लिए जैनधर्म का प्राथमिक ज्ञान कराने हेतु किया गया है।[1] इस ग्रन्थ मे कुल 173 गाथाएँ है।

उक्त ग्रन्थ का वर्ण्य-विषय दो श्रुतस्कन्धो मे विभक्त है। प्रथम श्रुतस्कन्ध की 153 गाथाओ मे द्रव्य के स्वरूप का प्रतिपादन कर शुद्धतत्त्व का निरूपण किया गया है और द्वितीय श्रुतस्कन्ध की 20 गाथाओ मे पदार्थ का वर्णन कर शुद्धात्मतत्त्व की प्राप्ति का मार्ग वतलाया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ पर आचार्य अमृतचन्द्र (10वी सदी) कृत 'समयव्याख्या' एव आचार्य जयसेन द्वितीय (12वी सदी) कृत 'तात्पर्यवृत्ति' नामक सस्कृत-टीकाएँ महत्त्वपूर्ण मानी गई हैं।

2 पवयणसारो (प्रवचनसार)

प्रस्तुत रचना मे जिनेन्द्र के प्रवचनो के सार का सीधी-सादी सरल भापा-शैली मे अकन किया गया है। यह ग्रन्थ कुन्दकुन्द के अन्य ग्रन्थो की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय एव लोकभोग्य सिद्ध हुआ है। इसका मूल वर्ण्य-विषय है प्रमाण एव प्रमेय तत्त्वो का प्रतिपादन। इसमे कुल 275 गाथाएँ है। ग्रन्थ की विषयवस्तु निम्नलिखित तीन अधिकारो मे विभक्त है—

(1) ज्ञानतत्त्व-प्रज्ञापन—इसमे शुद्धोपयोग, अतीन्द्रियज्ञान, आत्मा एव ज्ञान की एकता आदि का सरस वर्णन किया गया है। यह वर्णन 92 गाथाओ मे समाहित है।

(2) ज्ञेयतत्त्व-प्रज्ञापन—इसमे उत्पाद, व्यय एव ध्रौव्य रूप सत्ता एव द्रव्य-वर्णन, जीव-पुद्गल-वर्णन, निश्चय-व्यवहार दृष्टि एव शुद्धात्म आदि ज्ञेय पदार्थों का 108 गाथाओ मे वर्णन किया गया है।

(3) चरणानुयोगसूचक चूलिका—इस प्रकरण मे मोक्षमार्ग के साधन एव शुभोपयोग की 75 गाथाओ मे चर्चा की गई है।

---

1 "अथवा शिवकुमार-महाराजादि-सक्षेपरुचिशिष्यप्रतिवोधनार्थ विरचिते पचास्तिकायप्राभृतशास्त्रे·· "—देखिए जयसेन कृत पचास्तिकाय की तात्पर्यवृत्ति-टीका का प्रारम्भिक अश।

प्रस्तुत ग्रन्थ पर आचार्य अमृतचन्द्र कृत 'तत्त्वप्रदीपिकावृत्ति' एव आचार्य जयसेन कृत 'तात्पर्यवृत्ति' नाम की सस्कृत टीकाएँ सुप्रसिद्ध हैं।

3 समयसार (अथवा समयप्राभृत)

आचार्य अमृतचन्द्र ने प्रस्तुत ग्रन्थ की गुण-गरिमा का वर्णन करते हुए इसे विश्व का असाधारण अक्षय नेत्र कहा है। अनेक आचार्यों ने इसे परमागमो का सार कहा है। शोधार्थियो एव स्वाध्यायार्थियो मे यह ग्रन्थ इतना लोकप्रिय हुआ है कि इसके सर्वाधिक विविध सस्करण एव पद्यानुवादादि प्रकाशित हुए हैं। यह ग्रन्थ जैनधर्म-दर्शन की महिमा का स्थायी कीर्तिस्तम्भ, मोक्षमार्ग का अखण्ड दीप, मुमुक्षुओ के लिए कामधेनु तथा कल्पवृक्ष के समान माना गया है। आत्मतत्त्व का इतना सुन्दर, सरस एव प्रवाहपूर्ण गम्भीर विवेचन अन्यत्र उपलब्ध नही। परवर्ती लेखको के लिए यह ग्रन्थ एक प्रमुख प्रेरक स्रोत रहा है।

उक्त ग्रन्थ का वर्ण्य-विषय निम्न दस अधिकारो मे विभक्त है—

1	पूर्वरग एव जीवाधिकार	(38 गाथाएँ)
2	जीवाजीवाधिकार	(30 गाथाएँ)
3	कर्तृकर्माधिकार	(76 गाथाएँ)
4	पुण्यपापाधिकार	(19 गाथाएँ)
5	आस्रवाधिकार	(17 गाथाएँ)
6	सवराधिकार	(12 गाथाएँ)
7	निर्जराधिकार	(44 गाथाएँ)
8	बन्धाधिकार	(51 गाथाएँ)
9	मोक्षाधिकार	(20 गाथाएँ)
10	सर्वविशुद्ध ज्ञानाधिकार	(108 गाथाएँ)
		कुल 415 गाथाएँ

इस ग्रन्थ पर विविध विस्तृत अनेक टीकाएँ लिखी गई हैं, जिनमे से निम्न टीकाएँ एव हिन्दी अनुवाद प्रमुख हैं—

1 आचार्य अमृतचन्द्र कृत आत्मख्याति टीका (10वी सदी)

2 आचार्य जयसेन (द्वितीय) कृत तात्पर्यवृत्ति टीका (12वी सदी)

3 महाकवि बनारसीदास कृत समयसार नाटक (हिन्दी पद्यानुवाद, 17वी सदी)
4. आत्मख्याति एव तात्पर्यवृत्ति सह मूलपाठ—प० गजाधरलाल शास्त्री द्वारा सम्पादित (सनातन जैन ग्रन्थमाला वाराणसी 1914 ई०)
5 जे० एल० जैनी कृत अग्रेजी अनु० एव टीका (S B J Series Vol VIII) 1930 ई०
6 प्रो० ए० चक्रवर्त्ती कृत (अग्रेजी अनुवाद, मूल पाठ के साथ, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, द्वि० स० 1950)
7 प० जयचन्द्र कृत—(राजस्थानी भापा मे), सोनगढ 1955
8 प० गणेश प्रसाद वर्णी द्वारा सपादित (वर्णी दि० जैन सस्थान, वाराणसी)
9 मुनि क्षीरसागर कृत (हिन्दी पद्यानुवाद, अनु० आदि) 1956
10 टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर से प्रकाशित
11 प० पन्नालाल साहित्याचार्य द्वारा सपादित (कुन्दकुन्द भारती फल्टन, 1970)
12 प० बलभद्र जैन (कुन्दकुन्द भारती प्रकाशन, दिल्ली 1978)

4 नियमसार

आचार्य कुन्दकुन्द ने जहाँ पूर्वोक्त तीनो ग्रन्थ विशिष्ट रुचि एव बुद्धि वाले शिष्यो के लिए लिखे, वही प्रस्तुत ग्रन्थ उन्होंने केवल अपने लिए स्वान्त सुखाय लिखा, स्वात्माभिव्यक्ति (Inside out) के लिए लिखा। इसमे कुन्दकुन्द किसी तत्त्वोपदेष्टा या अनुशास्ता के रूप मे नही, बल्कि एक अन्तर्मुखी (Introvert) आत्मार्थी और गहन चिन्तक के रूप मे सम्मुख आए है। उन्होंने उक्त ग्रन्थ की सार्थकता बतलाते हुए स्वय कहा है—

णियभावणाणिमित्तं मए कद णियमसारणामसुदं।
णच्चा जिणोवदेस पुव्वावरदोसणिम्मुक्कं ॥186॥

अर्थात् पूर्वापर दोपरहित जिनोपदेश को जानकर ही मैंने अपनी भावना के निमित्त इस नियमसार नामक शास्त्र की रचना की है।

उक्त ग्रन्थ का वर्ण-विपय 12 अधिकारो मे विभक्त है। इसमे कुल 187 गाथाएँ हैं। अधिकारो के नाम इस प्रकार हैं—

1	जीवाधिकार	(19 गाथाएँ)
2	अजीवाधिकार	(18 ,,)
3.	शुद्धभावाधिकार	(18 ,,)
4	व्यवहारचारित्राधिकार	(21 ,,)
5	परमार्थप्रतिक्रमणाधिकार	(18 ,,)
6	निश्चयप्रत्याख्यानाधिकार	(12 ,,)
7	परमालोचनाधिकार	(6 ,,)
8.	शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्ताधिकार	(9 ,,)
9	परमसमाध्यधिकार	(12 ,,)
10	परमभक्त्यधिकार	(7 ,,)
11	निश्चयपरमावश्यकाधिकार	(18 ,,)
12	शुद्धोपयोगाधिकार	(28 ,,)

प्रस्तुत ग्रन्थ पर मुनिराज पद्मप्रभ मलधारिदेव (12 वी सदी) कृत 'तात्पर्यवृत्ति' नाम की सस्कृत टीका एव ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी कृत हिन्दी-टीका (1916 ई०) अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

5 पाहुडसाहित्य

'पाहुड' ठेठ जनभापा का शब्द है जिसका अर्थ है—उपहार अथवा सस्नेह भेंट। भोजपुरी वोली, जो कि विहार की प्रमुख वोलियो मे अग्रगण्य है, आज भी इसी अर्थ मे उसका प्रयोग किया जाता है। आचार्य कुन्दकुन्द प्रबुद्ध विचारको के लिए तो समयसार आदि अनेक विचारपूर्ण प्रौढ ग्रन्थ लिखकर उन्हे कृतार्थ कर चुके थे किन्तु सामान्य जनता, जिसमे अर्धशिक्षित, अशिक्षित, साधनविहीन एव उपेक्षित कर्मकरो की सख्या अधिक थी, उनके लिए भी लिखा जाना युग की माँग थी। ऐसी जनता के लिए विधि-निपेध विधा का सीधी-सादी सरल-भापा तथा मुक्तक शैली मे कुछ ऐसा लिखा जाना आवश्यक था, जिसमे ऋजुजडो एव वक्रजडो को उनके प्रशस्त मार्ग से स्खलित होने पर आवश्यकतानुसार तर्जना-वर्जना भी हो और आवश्यक-

तानुसार भावुक स्नेह-प्रदर्शन भी। जिसमे स्वर्णिम अतीत की पृष्ठभूमि की झाँकी हो और वर्तमान की यथार्थता का प्रदर्शन तथा भविष्य की भूमिका का सकेत भी। स्वस्थ समाज एव राष्ट्र-निर्माण के लिए इस प्रकार के सरचनात्मक साहित्य की महती आवश्यकता है। हमारी दृष्टि से प्रस्तुत पाहुडसाहित्य सामान्य जनता के लिए कुन्दकुन्द द्वारा प्रदत्त वस्तुत स्नेह-सिक्त उपहार तथा प्यार का पाथेय माना जा सकता है।

पाहुड (प्राभृत) साहित्य की विधा कुन्दकुन्द के अन्य ग्रन्थो की अपेक्षा भिन्न है। पूर्वोक्त साहित्य मे जहाँ वे प्रवचन-शास्त्री, तत्त्वोपदेष्टा एव आत्मार्थी चिन्तक के रूप मे दिखाई देते है, वही प्रस्तुत साहित्य मे वे एक तेजस्वी, समाजोद्धारक एव सशक्त अनुशास्ता के रूप मे दिखाई पडते है। पाहुडसाहित्य एक तीखा अकुश भी है, जो साधको को शिथिलाचार की ओर वढने से रोकता है। प्रतीत होता है कि कुन्दकुन्द-काल मे समाज मे शिथिलाचार का प्रवेश होने लगा था। उसे उससे वचाने तथा सावधान करने हेतु पाहुड-साहित्य का प्रणयन किया गया था। यह साहित्य साधको के लिए मान्य आचार-सहिता (code of conduct) था।

कहा जाता है कि कुन्दकुन्द ने 84 पाहुडो की रचना की थी किन्तु उनमे से वर्तमान मे 8 पाहुड ही उपलब्ध एव प्रकाशित है। यह पाहुड-साहित्य परस्पर मे सर्वथा स्वतन्त्र साहित्य है अर्थात् एक पाहुड से दूसरे पाहुड के विपय का कोई सम्बन्ध नही।

श्रुतसागर सूरि (16वी सदी) को अपने समय मे सम्भवतः छह पाहुड ही उपलब्ध हो सके थे, अत उन्होने उन्ही पर पाण्डित्यपूर्ण सस्कृत टीका लिखी, जो षट्प्राभृतादिसग्रह के नाम से प० नाथूराम प्रेमी के सत्प्रयत्न से सन् 1920 मे माणिकचन्द्र सीरीज़ से सर्वप्रथम प्रकाशित हुए। वाद मे दो पाहुड और उपलब्ध हुए। उनका भी उसमे समावेश कर लिया गया। अष्ट-पाहुडो पर हिन्दी मे प० जयचन्द जी छावडा की राजस्थानी भाषा-टीका प्रसिद्ध है। वाद मे अन्य विद्वानो ने भी उसके अनेक सस्करण प्रकाशित किए।

अष्टपाहुड के अन्तर्गत निम्नलिखित 8 रचनाएँ आती हैं—

(1) दर्शनपाहुड (36 गाथाएँ मात्र)
(2) सूत्रपाहुड (27 गाथाएँ ,,)

(3) चारित्रपाहुड (45 गाथाएँ मात्र)
(4) बोधपाहुड (61 गाथाएँ „)
(5) भावपाहुड (164 गाथाएँ „)
(6) मोक्षपाहुड (106 गाथाएँ „)
(7) लिंगपाहुड (22 गाथाएँ „)
(8) शीलपाहुड (40 गाथाएँ „)

6 बारस अणुवेक्खा (द्वादशानुप्रेक्षा)

पदार्थ के स्वरूप का बारम्बार सूक्ष्मातिसूक्ष्म एकाग्र चिन्तन (अनु+प्र+ईक्षण) करना ही अनुप्रेक्षा है। इन अनुप्रेक्षाओ को 'भावना' भी कहा गया है। वैराग्य सम्बन्धी भावना के पोषण की दृष्टि मे इसका विशेष महत्त्व है। ये अनुप्रेक्षाएँ अथवा भावनाएँ 12 होती हैं। आचार्य कुन्दकुन्द ने अपनी कुल 91 गाथाओ मे उनका क्रम निम्न प्रकार निर्धारित किया है—

अद्धुवमसरणमेगत्तमण्णससारलोगमसुचित्त ।
आसवसवरणिज्जरधम्म बोहिं च चिंतेज्जो ॥ (गाथा-2)

अर्थात् (1) अध्रुव (अनित्य), (2) अशरण, (3) एकत्व, (4) अन्यत्व, (5) ससार, (6) लोक, (7) अशुचित्व, (8) आस्रव, (9) सवर, (10) निर्जरा, (11) धर्म एव (12) बोधि। इन द्वादश अनुप्रेक्षाओ का चिन्तन करना चाहिए।

उक्त रचना के अनुकरण पर परवर्तीकालो मे प्राकृत, सस्कृत, अपभ्रश एव हिन्दी आदि मे लगभग दो दर्जन से अधिक रचनाएँ लिखी गईं।

7 भत्ति-सगहो (भक्ति-संग्रह)

प्रस्तुत साहित्य मे आराध्यो के प्रति भक्ति का निदर्शन एव व्याख्या की गई है। इस साहित्य का आचार, अध्यात्म एव सिद्धान्त की दृष्टि मे तो अपना विशेष महत्त्व है ही, साहित्यिक इतिहास की दृष्टि से भी उनका विशेष महत्त्व है। क्योकि इस भक्ति-साहित्य की प्रत्येक रचना के अन्त मे प्राकृत गद्याश भी प्रस्तुत किया गया है। ये अश ऐतिहासिक महत्त्व के हैं, क्योकि एक ओर तो वे जैन-शौरसेनी की गद्य-शैली का प्रतिनिधित्व करते हैं और दूसरी ओर, जैन-शौरसेनी भाषा के परिनिष्ठित रूप को प्रस्तुत करते हैं।

यद्यपि हाथीगुम्फा-शिलालेख (वीर पराक्रमी जैन-सम्राट कलिगाधिपति खारवेल सम्बन्धी) को जैन-शौरसेनी प्राकृत का प्राचीनतम उदाहरण माना गया है किन्तु उसमे सन्दर्भित भाषा का स्थिर रूप नही आ सका है। अत जैन-शौरसेनी के गद्याशो तथा उनकी परिनिष्ठित भाषा के कारण यह साहित्य विशेप महत्त्वपूर्ण है।

उक्त भक्ति-साहित्य कुन्दकुन्द कृत है या नही, इस सन्देह का निराकरण आचार्य प्रभाचन्द्र की इस उक्ति से हो जाता है जिसमे उन्होने स्पप्ट लिखा है कि 'प्राकृत-भक्ति-सग्रह' तो आचार्य कुन्दकुन्द कृत है जबकि 'सस्कृत-भक्ति-सग्रह' पूज्यपाद स्वामी कृत (सस्कृता सर्वा भक्त्य पूज्यपादस्वामिकृता प्राकृतास्तु कुन्दकुन्दाचार्यकृता०)। इन भक्तियो के नाम एव क्रम इस प्रकार हैं —

(1) तीर्थंकरभक्ति (8 गाथाएँ एव गद्याश)
(2) सिद्धभक्ति (12 ,, ,,)
(3) श्रुतभक्ति (11 ,, ,,)
(4) चारित्रभक्ति (10 ,, ,,)
(5) योगिभक्ति (23 ,, ,,)
(6) आचार्यभक्ति (10 ,, ,,)
(7) निर्वाणभक्ति (21 ,, ,,)
(8) नन्दीश्वरभक्ति (केवल गद्याश)
(9) शान्तिभक्ति (केवल गद्याश)
(10) समाधिभक्ति (केवल गद्याश)
(11) पञ्चगुरुभक्ति (7 गाथाएँ एव गद्याश), एव
(12) चैत्यभक्ति (केवल गद्याश)

8 रयणसार (रत्नसार)

प्रस्तुत ग्रन्थ मे सागार (गृहस्थ) एव अनगार (मुनि) के आचार-धर्म के विविध पक्षो की सरल एव सरस भाषा-शैली मे व्याख्या की गई है। इस रचना के अद्यावधि अनेक सस्करण निकल चुके हैं किन्तु डॉ० देवेन्द्र कुमार शास्त्री द्वारा सम्पादित सस्करण (इन्दौर, 1974 ई०) सर्वश्रेष्ठ, प्रामाणिक एव सर्वोपादेय है। प्रस्तुत रचना मे 155+12 गाथाएँ है।

3. कुन्दकुन्द साहित्य का काव्य-सौष्ठव

कुन्दकुन्द की भाषा

आचार्य कुन्दकुन्द को केवल अध्यात्मी सन्त-कवि मानकर उनके विराट व्यक्तित्व को सीमित करना उपयुक्त नही। वे निश्चय ही एक योगी और सिद्ध महापुरुष तो थे ही, इसके अतिरिक्त वे एक महान् भाषाविद्, साहित्यकार एव भारतीय सस्कृति के प्रामाणिक आचार्य-लेखक भी थे।

भाषा-वैज्ञानिको ने उनके साहित्य की भाषा को जैन-शौरसेनी प्राकृत माना है। शौरसेनी (नाटको मे प्रयुक्त शौरसेनी) और जैन-शौरसेनी प्राकृत मे वही अन्तर है जो वैदिक और लौकिक सस्कृत मे, मागधी और अर्धमगधी प्राकृत मे, महाराष्ट्री और जैन-महाराष्ट्री प्राकृत मे, अपभ्रश और अवहट्ठ मे तथा हिन्दी और हिन्दुस्तानी मे है।

प्राकृत के तीन प्रमुख स्तर एव जैन शौरसेनी प्राकृत

यहाँ विषय-विस्तार के भय से सामान्य भाषा-भेद पर अधिक विचार न कर केवल इतनी जानकारी दे देना ही पर्याप्त है कि भाषा वैज्ञानिको ने प्राकृत-भाषा के तीन प्रमुख स्तर माने हैं—(1) मागधी, (2) अर्धमागधी एव (3) शौरसेनी। कुन्दकुन्द की भाषा की मूल-प्रवृत्ति शौरसेनी होने पर वह प्राच्य-अर्धमागधी से अधिक प्रभावित है। जैनेतर सस्कृत नाटको की शौरसेनी से कुन्दकुन्द की शौरसेनी अधिक प्राचीन है। महाकवि दण्डी के अनुसार, प्राकृत (अर्थात् शौरसेनी प्राकृत) ने महाराष्ट्र प्रदेश मे प्रवेश पाने पर जो रूप धारण किया, वही उत्कृष्ट महाराष्ट्री प्राकृत के नाम से प्रसिद्ध

हुई। आगे चलकर अर्धमागधी आगम-साहित्य मे भी उस महाराष्ट्री प्राकृत की कुछ प्रवृत्तियो का प्रवेश हो गया। यही नही, उत्तर एव पश्चिमी भारत मे जो प्राकृत साहित्य लिखा गया, उसमे भी महाराष्ट्री की प्रवृत्तियो का समावेश हो गया, इस कारण उसे जैन-महाराष्ट्री के नाम से अभिहित किया गया। किन्तु यह तथ्य है कि षट्खण्डागम-साहित्य मे शौरसेनी की मूल प्रवृत्तियाँ ही अधिक हैं तथा महाराष्ट्री प्राकृत की प्रवृत्तियाँ गौणतर दिखाई देती हैं। इसे ही जैन शौरसेनी भी कहा गया है।

कुन्दकुन्द की भाषा की कुछ प्रमुख-प्रवृत्तियाँ

यहाँ यह प्रश्न उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि महाराष्ट्र तथा गुजरात मे जब महाराष्ट्री प्राकृत की प्रवृत्तियो का पूर्ण या आंशिक रूप मे प्रवेश हो गया था, तब सुदूर-दक्षिण मे बैठकर लिखा गया साहित्य उससे गौण रूप मे ही क्यो प्रभावित हो सका? इसका एक सामान्य-सा यही उत्तर हो सकता है कि उस साहित्य का प्रणयन दक्षिण मे महाराष्ट्री प्राकृत के प्रभाव के पूर्व ही हो चुका हो तथा आर्येतर भाषाओ के मध्य रहकर भी अपनी पूर्व भाषा के रूप का अभ्यास करते रहने के कारण वे (कुन्दकुन्द आदि) महाराष्ट्री के प्रभाव से बहुत कुछ अशो तक बचे रहे हो। इस प्रकार आचार्य कुन्दकुन्द की भाषा जैन-शौरसेनी है, जिसकी कुछ मुख्य-प्रवृत्तियाँ निम्न प्रकार हैं—

(1) कर्त्ता कारक एक वचन पुल्लिंग मे 'ओ'। यथा—

जादो<जात (प्रवचन० गा० 19)
उप्पादो<उत्पाद (प्रवचन० गा० 18)
भणिदो<भणित (प्रवचन० गा० 14)

(2) तवर्गीय प्रथम एव द्वितीय वर्णो के स्थान पर क्रमश: तृतीय एवं चतुर्थ वर्णो का पाया जाना। यथा—

भूदो<भूत (प्रवचन 16)
होदि]
हवदि] <भवति (प्रवचन० 16, 113)

कध < कथम् (प्रवचन० 113)
तधा < तथा (प्रवचन० 146)
अपवाद—अधिकतेजो < अधिकतेज (प्रवचन० 19)

(3) महाराष्ट्री-प्राकृत के समान मध्य एव अन्त्यवर्त्ती ककार-लोप एव अ-स्वर शेष। यथा—

वेउव्विओ < वैक्रियिक (प्रवचन० 171)

(4) महाराष्ट्री-प्राकृत के समान मध्य एव अन्त्यवर्त्ती क्, ग्, च्, ज्, त्, द् का प्राय अनियमित रूप से लोप तथा उद्वृत्त-स्वर के स्थान पर य-श्रुति का पाया जाना तथा अनादि प-कार के लुप्त होने पर उद्वृत्त स्वर के स्थान पर व-श्रुति का पाया जाना। यथा —

य-श्रुति→सयल < सकल (प्रवचन० 54)
आयास < आकाश (पञ्चास्ति० 91)
लोय < लोक (प्रवचन० 35)
सायर < सागर (पञ्चास्ति० 172)
वयणेहि < वचनै (पञ्चास्ति० 34)
भायणो < भाजन (भावप्राभृत० 65 तथा 69)
सुय < श्रुतम् (प्रवचन० 33)
मारुयवाहा < मारुतवाधा (भावप्राभृत 121)
पयत्थो < पदार्थ (प्रवचन० 14)
उयरे < उदरे (भावपाहुड 39)
हवइ < भवति (मोक्षपाहुड 38)
व-श्रुति—उपवासो < उपवास (प्रवचन०, 1/69)
उपधीदो < उपधीत (प्रवचन० 3/19)

(5) (क) प्रथमा विभक्ति मे महाराष्ट्री-प्राकृत के समान 'ओ' यथा—

सो < स (चारित्रप्रा 38)
जो < य („ „)

(ख) चतुर्थी एव षष्ठी के बहुवचन मे—'सिं'। यथा—

तेसिं < तेभ्य (प्रवचन० 82)

(ग) पचमी के एकवचन मे शौरसेनी-प्राकृत के समान 'आदो'-प्रत्यय, यथा—

परिणामादो<परिणामात् (प्रवचन॰ 129)

महाराष्ट्री प्राकृत के समान, तम्हा<तस्मात् (प्रवचन 84)

(घ) सप्तमी मे अर्धमागधी प्राकृत के समान—म्मि, म्हि प्रत्यय। यथा—

दाणम्मि<दाने (प्रवचन॰ 69)

एगम्हि<एकस्मिन् (प्रवचन॰ 143)

(6) √कृ—कुव्वदु<करोतु, शौरसेनी के समान (प्रवचन॰ 251)

करेदि<करोति, „ „ „ (पचास्ति॰ 88)

कुणइ<करोति, महाराष्ट्री के समान (मोक्षपाहुड 42)

कुणदि<करोति, शौरसेनी के समान (प्रवचन॰ 149)

करेई<करोति—महाराष्ट्री के समान—(रयण॰ 96)

(7) (क) क्त्वा प्रत्यय के स्थान मे महाराष्ट्री एव शौरसेनी के समान 'त्ता' प्रत्यय'। यथा—

वदित्ता—वन्दित्वा<(बोधपाहुड 1)

(ख) क्त्वा प्रत्यय के स्थान मे 'य'। यथा—

भवीय<भूत्वा (प्रवचन॰ 151)

गहीय<गृहीत्वा

किच्चा<कृत्वा (प्रवचन॰ 82)

(ग) शौरसेनी एव महाराष्ट्री के दूण एव ऊण प्रत्ययो के प्रयोगो का पाया जाना। यथा—

सुणिदूण<श्रुत्वा (प्रवचन॰ 1/62) शौरसेनी प्रयोग

काऊण<कृत्वा (दर्शनपाहुड 1/1) महाराष्ट्री प्रयोग

अलकार-प्रयोग

यह सत्य है कि आचार्य कुन्दकुन्द अलकार-शास्त्री नही थे और न वे वर्ण्य-विषय को पाण्डित्य-प्रदर्शन हेतु अलकारो की जवर्दस्त ठूँस-ठाँस से जटिल एव बोझिल बनाना चाहते थे। फिर भी उनकी कृतियो मे उपमा,

रूपक, अप्रस्तुतप्रशसा, उदाहरण आदि अलकार मिलते हैं, जो सहज-स्वाभाविक रूप मे ही प्रयुक्त हैं, प्रयत्नसाध्य नही। उनके कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं—

उपमालकार

प्रवचनसार के शुभोपयोग वर्णन-प्रसग मे देखिए, उपमालकार का कितना सुन्दर एव स्वाभाविक प्रयोग हुआ है—

कुलिसाउहचक्कधरा सुहोवओगप्पगेहिं भोगेहिं।
देहादीण विद्धि करेंति सुहिदा इवाभिरदा ॥ 1/73॥

और भी,

पुरिसेण वि सहियाए कुसमयमूढेहिं विसयलोलेहिं।
ससारे भमिदव्व अरयघरट्ट व भूदेहिं ॥
(शीलपाहुड-26)

जह सलिलेण ण लिप्पइ कमलिणिपत्त सहावपयडीए।
तह भावेण ण लिप्पइ कसाइविसए वि सुप्पुरिसो ॥
(भावपाहुड-153)

रूपकालकार

निम्नलिखित उद्धरणो मे उपमेय मे उपमान का निषेधरहित आरोप किया गया है। अत उनमे रूपकालकार का सहज प्रयोग देखा जा सकता है—

ते धीरवीरपुरिसा खमदमखग्गेण विप्फुरतेण।
दुज्जयपवलवलुद्धरकसायभडणिज्जिया जेहिं ॥
(भावपाहुड-155)

मायाबेल्लि असेसा मोहमहातरुवरम्मि आरूढा।
विसयविसपुप्फफुल्लिय लुणति मुणि णाणसत्थेहिं ॥
(भावपाहुड-157)

अनुप्रास-अलकार

ससिद्धिराधसिद्ध साधिदमाराधिदं च एयट्ठ ।
अवगदराधो जो खलु चेदा सो होदि अवराधो ।।

(समयसार-304)

अप्रस्तुतप्रशसालकार

"गुडमिश्रित दूध पीने पर भी सर्प विष रहित नही हो सकता ।" इस उक्ति के द्वारा अप्रस्तुतप्रशसा का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया गया है । यथा—

ण मुयइ पयडि अभव्वो सुट्ठु वि आयण्णिऊण जिणधम्म ।
गुडसुद्ध पि पिवता ण पण्णया णिव्विसा होंति ।।

(भावपाहुड-137)

उदाहरणालकार

कुन्दकुन्द-साहित्य मे उदाहणालकारो की छटा तो प्राय सर्वत्र ही बिखरी हुई है । कुन्दकुन्द ने वालाववोध के लिए लौकिक उपमानो एव उपमेयो के माध्यम से अपने सिद्धान्तो को पुष्ट करने का प्रयास किया है । उनके ये उपसान-उपमेय परम्परा प्राप्त न होकर प्राय सर्वथा नवीन है । नई नई उद्भावनाओ के द्वारा उन्होने उदाहरणो की झडी-सी लगा दी है । समयसार के पुण्य-पापाधिकार मे पुण्य-पाप की प्रवृत्ति को समझाने के लिए उन्होने देखिए, कितना सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है—

सोवण्णियम्हि णियल वधदि कालायस च जह पुरिस ।
वधदि एव जीव सुहमसुह वा कद कम्म ।। 146।।

अर्थात् जिस प्रकार पुरुष को लोहे की वेडी बाँधती है और स्वर्ण की वेडी भी बाँधती है, उसी प्रकार किया गया शुभ अथवा अशुभ कर्म भी जीव को बाँधता ही है ।

इसी प्रकार कर्मभाव के पककर गिरने के लिए पके हुए फल के गिरने का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया गया है—

पक्के फलम्हि पडिए जह ण फलं बज्झए पुणो विंटे।
जीवस्य कम्मभावे पडिए ण पुणोदयमुवेई॥ (समय०-168)

अर्थात् जिस प्रकार कोई फल पक कर जब गिर जाता है, तब वह पुन बौंडी के साथ नही बँध सकता। उसी प्रकार जब जीव का कर्मभाव पककर गिर जाता है, तब फिर वह पुन उदय को प्राप्त नही होता।

रहस्यवाद की झाँकी

ज मया दिस्सदे रूव तण्ण जाणादि सव्वहा।
जाणग दिस्सदे णत तम्हा जपेमि केण ह॥ (मोक्ख-29)

अर्थात् जो रूप मेरे द्वारा देखा गया है, वह सर्वथा जानता नही और जो जानता है वह दिखाई नही देता। तब मैं किसके साथ बात करूँ? इस प्रकार निराकार अदृश्य जीवात्मा का यहाँ सुन्दर वर्णन किया गया है।

कूट-पद-प्रय ग

कूट-पदो के प्रयोग कुन्दकुन्द-साहित्य मे प्रचुरता से नही मिलते, क्वचित् कदाचित् ही मिलते है। वस्तुत इस प्रकार की रचनाएँ, जिनके कि शब्दो के साथ साधारण अर्थ भी रहते हैं, फिर भी सरलता से उनका भाव समझने मे कठिनाई होती है और जिनका अर्थ शब्दो की भूलभुलैयो मे प्रच्छन्न रहता है, वे कूट-पद कहलाते है। कुन्दकुन्द-साहित्य मे भी कही-कही इस प्रकार के कुछ कूट-पद उपलब्ध है। उदाहरणार्थ—

तिहि तिण्णि धरिवि णिच्च नियरहिओ तह तिरुण परियरियो।
दो दोसविप्पमुक्को परमप्पाझायए जोइ॥ (मोक्ष० 44)॥

अर्थात् तीन (अर्थात् मन, वचन एव काय) के द्वारा तीन (अर्थात् वर्षा-कालयोग, शीतकालयोग और उष्णकालयोग) को धारण कर निरन्तर तीन (अर्थात् मिथ्यात्व एव निदानरूप शल्यो) से रहित तीन (अर्थात् सम्यदर्शन आदि तीन रत्नो) से युक्त और दो दोषो (अर्थात् राग एव द्वेप) से रहित योगी, परमात्मा अर्थात् सिद्ध के समान उत्कृष्ट आत्म-स्वरूप का ध्यान करता है। (इस पद्य का अर्थ विपय का विशेप जानकर

ही समझ सकता है, सामान्य बुद्धि वाला व्यक्ति नही। इसी प्रकार के पद्य कूट-पद कहलाते हैं। इसी प्रकार रयणसार (गाथा—7, 19, 31, 99), भावपाहुड (97), मोक्षपाहुड (44), बारसअणुवेक्खा (10, 54) मे भी इस प्रकार के कूट-पद उपलब्ध हैं।

छन्द-योजना

जिस प्रकार सस्कृत का 'आर्या-छन्द' एव अपभ्रश का 'दूहा-छन्द' प्रसिद्ध है, उसी प्रकार प्राकृत का 'गाथा-छन्द' प्रसिद्ध है। ये तीनो छन्द सरल, सरस एव गेय होने तथा द्विपदी होने के कारण तथा इन्हें कण्ठस्थ कर लेने मे सुविधा होने के कारण प्रारम्भ से ही लोकप्रिय रहे हैं।

कुन्दकुन्द साहित्य का प्रमुख छन्द 'गाथा-छन्द' है। प्राभृत-साहित्य विशेषतया भावप्राभृत, मोक्षप्राभृत एव समयप्राभृत तथा नियमसार मे अनुष्टुप-छन्द का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा मे मिलता है। भाषा की सरलता और लौकिक उदाहरण से युक्त होने के कारण सहज बोधगम्य तथा गेयता की दृष्टि से निम्न गाथा-छन्द दृष्टव्य है—

जह पउमरायरयण खित्त खीरे पभासयदि खीर।
तह देही देहत्थो सदेहमत्त पभासयदि ॥—पचास्ति०-33 ॥

अर्थात् जिस प्रकार दूध मे पडा हुआ पद्मरागमणि सम्पूर्ण दूध को प्रभामित कर देता है, उसी प्रकार शरीर म स्थित आत्मा भी समस्त शरीर को प्रभासित कर लेता है।

अनुष्टुप

जो दु पुण्ण च पाव च भाव वज्जेदि णिच्चसा।
तस्स सामाइग ठाई इदि केवलिसासणे ॥—नियमसार 130 ॥

उग्गाहा

णाण अप्पपयास णिच्छयणयेण दसण तम्हा।
अप्पा अप्पपयासो णिच्छयणयेण दसण तम्हा ॥
(नियमसार 165)

गाहिणी

णहि दाण णहि पूया णहि सील णहि गुण ण चारित्त।
जे जइणा भणिदा ते णेरइया होंति कुमाणुसा तिरिया ।।

(रयणसार 39)

चपला

अज्जवसप्पिणि भरहे पंचमयाले मिच्छपुव्वया सुलहा।
सम्मत्तपुव्व सायारणयारा दुल्लहा होंति ।।

(रयणसार 55)

4. राष्ट्रीय भावात्मक एकता एवं अखंडता के क्षेत्र मे आचार्य कुन्दकुन्द

कुन्दकुन्द-साहित्य के अद्यावधि अध्ययन से यह तो स्पष्ट ही है कि उन्होने जैन दर्शन, अध्यात्म एव आचार के क्षेत्र मे मौलिक चिन्तन किया तथा परवर्ती आचार्य-लेखको के लिए वे तेजोद्दीप्त प्रकाश-स्तम्भ सिद्ध हुए। किन्तु इसके अतिरिक्त भी उन्होंने राष्ट्रीय भावात्मक एकता एव अखण्डता, स्वस्थ समाज एव राष्ट्र-निर्माण, लोकप्रिय जन-भाषा प्रयोग तथा समकालीन भारतीय सस्कृति एव भूगोल को भी प्रकाशित किया और इस प्रकार विविध सकीर्णताओ से ऊपर उठकर उन्होंने अपने निष्पक्ष चिन्तक-लेखक के सार्व-जनीन रूप को भी प्रकट किया है। यहाँ उन तथ्यो पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जा रहा है। साहित्य-लेखन के माध्यम से कुन्दकुन्द के राष्ट्रीय मूल्य के निम्न कार्य विशेष महत्त्वपूर्ण हैं—

1 स्वरचित साहित्य मे समकालीन लोकप्रिय जनभाषा—शौरसेनी-प्राकृत का आजीवन-प्रयोग,

2 सर्वोदयी सस्कृति का प्रचार, तथा

3 राष्ट्रीय भावात्मक एकता एव अखण्डता के लिए प्रयत्न।

समकालीन जनभाषा-प्रयोग—आधुनिक दृष्टि से यदि विचार किया जाय तो आचार्य कुन्दकुन्द अपने समय के एक समर्थ जनवादी सन्त-विचारक एव लेखक थे। इस कोटि का लेखक बिना किसी वर्गभेद एव वर्णभेद की भावना के, प्रत्येक व्यक्ति के पास पहुँचने का प्रयत्न करता है और उसके सुख-दुख की जानकारी प्राप्त कर उन्हें जीवन के यथार्थ सुख-सन्तोष का

रहस्य वतलाना चाहता है। जनता जनार्दन से घुलने-मिलने के लिए वस्तुत किसी भी प्रकार की साज-सज्जा या वैभवपूर्ण आडम्बरो की आवश्यकता नही होती। क्योकि इनकी तडक-भडक से सामान्य जनता उनसे विश्वास-पूर्वक घुल-मिल नही पाती। इसीलिए लोकहित की दृष्टि से कुन्दकुन्द ने अपने घर का वैभव छोडा, गृहत्याग किया, निर्ग्रन्थ वेश धारण किया, पद-यात्रा का आजीवन व्रत लिया और सबसे बडी प्रतिज्ञा यह की कि वे सामान्य-जनता के हितार्थ लोकप्रचलित जनभाषा का ही प्रयोग करेंगे, उसी मे प्रवचन करेंगे, उसी मे वोलेंगे, उसी मे सोचेंगे और उसी में लिखेंगे भी। उस दृढ व्रत का उन्होने आजीवन पालन भी किया।

आचार्य कुन्दकुन्द के समय मे अर्थात् आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व की जनभापा को भापा-शास्त्रियो ने 'प्राकृत-भापा' कहा है। कुन्दकुन्द के पूर्व भी प्राकृतो का प्रयोग होता आया था। तीर्थंकर पार्श्वनाथ, महावीर एव बुद्ध ने जनभापा-प्राकृत का ही प्रयोग किया था। यही नही, प्रियदर्शी सम्राट अशोक ने अपने अध्यादेश जनभाषा प्राकृत मे ही प्रसारित किए थे तथा कलिग-नरेश खारवेल ने भी अपने राज्य-काल का पूर्ण विवरण प्राकृत मे ही प्रस्तुत किया था। किन्तु इन सभी की जनभाषा पूर्वी-भारत मे प्रचलित वह जनभापा थी, जिसे मागधी अथवा अर्धमागधी के नाम से अभिहित किया गया है। आचार्य कुन्दकुन्द की स्थिति इससे भिन्न है।

आचार्य कुन्दकुन्द पहले समर्थ लेखक एव कवि हैं, जिन्होंने दाक्षिणात्य होते हुए भी उत्तर-भारत मे जन्मी किसी जनभाषा (जिसे भापा-शास्त्रियो ने 'शौरसेनी प्राकृत' कहा) का केवल प्रयोग मात्र ही नही किया, वल्कि उनमे निर्भीकतापूर्वक विना किसी सोच-सकोच के, धाराप्रवाह विविध विपयक विस्तृत साहित्य का प्रणयन भी किया और उसकी लोकप्रियता मे चार चाँद लगा दिए। परवर्तीत लेखक-आचार्यों के सम्मुख उन्होंने इतना सरस एव मर्मस्पर्शी साहित्य लिखकर एक विशेप आदर्श उपस्थित किया, जिसमे प्रेरणा लेकर अनेक कवि 11वी-12वी सदी तक उसी भापा मे साहित्य-प्रणयन करते रहे।

आधुनिक भारतीय भाषाओ के उद्भव एव विकास के अध्ययन-क्रम मे भाषा-वैज्ञानिको ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि ब्रजवोली का उद्भव एव

विकास शौरसेनी-प्राकृत से हुआ है। अत निष्पक्ष दृष्टि से देखा जाय तो कुन्दकुन्द ही ऐसे प्रथम आचार्य है, जिनके साहित्य ने आधुनिक ब्रजभाषा एव साहित्य को न केवल भावभूमि प्रदान की, अपितु उसके बहुआयामी अध्ययन के लिए मूल-स्रोत भी प्रदान किए। इस दृष्टि से कुन्दकुन्द को हिन्दी-साहित्य, विशेषतया ब्रजभाषा एव साहित्य रूपी भव्य प्रासाद की नीव का ठोस पत्थर माना जाय, तो अत्युक्ति न होगी।

सर्वोदयी सस्कृति का प्रचार—कुन्दकुन्द की दूसरी विशेषता है उनके द्वारा सर्वोदयी सस्कृति का प्रचार। भारतीय-सस्कृति त्याग की सस्कृति है, भोग की नही। कुन्दकुन्द ने उसे आपादमस्तक समझा एव सराहा था। वे सिद्धान्तो के प्रदर्शन मे नही, बल्कि उन्हे जीवन मे उतारने की आवश्यकता पर बल देते थे। उनके जो भी आदर्श थे, उनका सर्वप्रथम प्रयोग उन्होंने अपने जीवन पर किया और जब वे उसमे खरे उतरते थे, तभी उन्हे सार्वजनीन रूप देते थे। उनके 'पाहुडसाहित्य' का यदि गम्भीर विश्लेषण किया जाय, तो उससे यह स्पष्ट विदित हो जायगा कि उनके अहिंसक एव अपरिग्रह सम्बन्धी सिद्धान्त केवल मानव-समाज तक ही सीमित न थे, अपितु समस्त प्राणी-जगत् पर भी लागू होते थे। 'जिओ और जीने दो' के सिद्धान्त का उन्होने आजीवन प्रचार किया।

आचार्य कुन्दकुन्द की सर्वोदयी-सस्कृति का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। वह वस्तुतः हृदय-परिवर्तन एव आत्मगुणो के विकास की सस्कृति है। उसका मूल आधार मैत्री, प्रमोद, कारुण्य एव मध्यस्थ-भावना है। रुपयो-पैसो, सोना-चाँदी, वैभव, पद-प्रभाव आदि के बल पर अथवा भौतिक-शक्ति के बल पर क्या आत्मगुणो का विकास किया जा सकता है ? क्या शारीरिक सौन्दर्य से तथा उच्च-कुल एव जाति मे जन्म ले लेने मात्र से ही सद्गुणो का आविर्भाव हो जाता है ? सरलता, निश्छलता, दयालुता, परदु खकातरता, श्रद्धा एव सम्मान की भावना क्या दूकानो पर बिकती है, जो खरीदी जा सके ? नही। सदगुण तो यथार्थत श्रेष्ठ गुणीजनो के ससर्ग से एव वीतराग-वाणी के अध्ययन से ही आ सकते हैं। कुन्दकुन्द ने कितना सुन्दर कहा है—

णवि देही वदिज्जइ णविय कुलो णविय जाइ संजुत्तो।
को वदइ गुणहीणो णहु सवणो णेव सावओ होइ ॥ दसण० 27

अर्थात् न तो शरीर की वन्दना की जाती है और न कुल की। उच्च जाति की भी वन्दना नही की जाती। गुणहीन की वन्दना तो कौन करेगा? क्योंकि न तो गुणो के विना मुनि हो सकता है और न ही श्रावक। पुन. कुन्दकुन्द कहते हैं—

सव्वे विय परिहीणा रूवविरूवा वि वदिदसुवया वि।
सील जेसु सुसील सुजीविद माणुसं तेसिं ॥ सील० 18

अर्थात् भले ही कोई हीन जाति का हो, सौन्दर्य-विहीन कुरूप हो, विकलाग हो, झुर्रियो से युक्त वृद्धावस्था को भी प्राप्त क्यो न हो, इन सभी विरूपो के होने पर भी यदि वह उत्तम शील का धारक हो तथा यदि उसके मानवीय गुण जीवित हो तो उस विरूप का भी मनुष्य-जन्म श्रेष्ठ है।

आत्मगुण के विकास का अर्थ कुन्दकुन्द ने यही माना है कि जिससे व्यक्ति अपने परिवार, समाज एव देश का कल्याण कर सके। इन सवके लिए व्यक्ति का सच्चरित्र होना अत्यावश्यक है। यह गुण सार्वकालिक एव सार्वभौमिक सत्य है। सम्राट अशोक तब तक प्रियदर्शी न बन सका और तव तक भारत-माता के गले का हार न बन सका, जब तक उसने कलिंग-युद्ध के अपराध के प्रायश्चित मे अपनी तलवार तोडकर नही फेंक दी और अहिंसक जीवन व्यतीत नही करने लगा। मोहनदास करमचन्द गाधी तब तक महात्मा नही वन सके जब तक उन्होने महर्षि जनक, तीर्थंकर महावीर एव गौतमबुद्ध की भूमि का स्पर्श कर अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य एव अपरिग्रह को अपने जीवन मे नही उतार लिया।

जीवन के सन्तुलन एव समरसता के लिए ज्ञान एव साधना अथवा तप के समन्वय पर कुन्दकुन्द ने विशेष वल दिया, क्योकि एक के बिना दूसरा अन्धा व लगडा है। पारस्परिक सयमन के लिए एक को दूसरे की महती आवश्यकता है। कुन्दकुन्द ने स्पष्ट कहा है—

तवरहिय ज णाण णाणविजुत्तो तवो वि अकयत्थो।
तम्हा णाणतवेण संजुत्तो लहइ णिव्वाणं ॥ मोक्ख ० 59

अर्थात् तपरहित ज्ञान एव ज्ञानरहित तप ये दोनो ही निरर्थक हैं (अर्थात् एक के विना दूसरा अन्धा एव लँगडा है) अतः ज्ञान एव तप से युक्त माधक ही अपने यथार्थ लक्ष्य को प्राप्त करता है।

पूर्व-परम्परा प्राप्त कर आचार्य कुन्दकुन्द ने ससार की समस्त समाज-विरोधी दुष्प्रवृत्तियो एव अनाचारो को पाँच भागो मे विभक्त किया—हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील एव परिग्रह। इनका यथाशक्ति त्याग करना ही श्रावकाचार है तथा सर्वदेश त्याग करना ही मुनि-आचार। जैनधर्म की यह आचार-व्यवस्था वस्तुत सर्वोदयवाद का अपरनाम माना जा सकता है, क्योकि उन दोनो मे न केवल मानव के प्रति, अपितु समस्त प्राणि-जगत् के प्रति ही मद्भावना, सुरक्षा एव उसके विकास की प्रक्रिया मे उसके सहयोग की पूर्ण कल्याण-कामना निहित रहती है। अत यदि जैनाचार का मन, वचन एव काय मे निर्दोष पालन होने लगे, तो सारा ससार स्वत ही सुधर जायगा। कोर्ट-कचहरियो एव थानो की आवश्यकता ही नही रहेगी। उनमे ताले पड जावेंगे। पुलिस, सेना, तोप एव तलवारो की भी आवश्यकता नहीं रहेगी।

Indian Penal Code मे वर्णित अपराध-कर्मों तथा पूर्वोक्त पाँच पापो का यदि विधिवत् अध्ययन किया जाये, तो उनमे आश्चर्यजनक समानता दृष्टिगोचर होती है।[1] इस कोड मे भी पाँच-पापो का विभिन्न धाराओ मे वर्गीकरण कर उनके लिए विविध दण्डो की व्यवस्था का वर्णन किया गया है। अन्तर केवल यही है कि एक मे प्रायश्चित, साधना, आत्म-मयम तथा आत्मशुद्धि के द्वारा अपराध-कर्मों से मुक्ति का विधान है, तो दूमरे मे कारागार की सजा, अर्थदण्ड एव पुलिस की मारपीट आदि से अपराध-कर्मों की प्रवृत्ति को छुडाने के प्रयत्न की व्यवस्था है।

आदर्शवादी दृष्टिकोण से यदि देखा जाय तो स्वस्थ समाज एव

---

1 विशेष जानकारी के लिए दे० रत्नकरण्डश्रावकाचार [सम्पादक—श्री क्षुल्लक धर्मानन्दजी, दिल्ली 1988] मे डॉ० राजाराम जैन द्वारा लिखित प्राक्कथन।

कल्याणकारी राष्ट्र-निर्माण की दृष्टि से कुन्दकुन्द द्वारा निर्दशित जैनाचार अथवा सर्वोदय का सिद्धान्त आज भी उतना ही प्रासगिक है, जितना कि आज से दो हजार वर्ष पूर्व। विश्व की विषम समस्याओ का समाधान उसी से सम्भव है।

राष्ट्रीय भावात्मक एकता एवं अखण्डता के लिए प्रयत्न—आचार्य कुन्दकुद ने तीमरा महत्त्वपूर्ण कार्य किया राष्ट्रीय अखण्डता एव एकता का। वे स्वय तो दक्षिणात्य थे। उन्होने वहाँ की किसी भापा मे कुछ लिखा या नही, इसकी निश्चित सूचना नही है। तमिल के पचमवेद के रूप मे प्रसिद्ध थिरुक्कुरल नामक काव्य-ग्रन्थ का लेखन उन्होने किया था, ऐसी कुछ विद्वानो की मान्यता है किन्तु यह मान्यता अभी तक सर्वसम्मत नही हो पाई है। फिर भी यदि यह मान भी लें कि वह उन्ही की रचना है तो भी उन्होने बाद मे प्रान्तीय सकीर्णता से ऊपर उठने का निश्चय किया और शूरसेन देश (अथवा मथुरा) के नाम पर प्रसिद्ध शौरसेनी-प्राकृत-भापा का उन्होंने गहन अध्ययन किया तथा उसी मे उन्होने यावज्जीवन साहित्य-रचना की। जीवन की यथार्थता का चित्रण, भाषा की सरलता, सहज वर्णन-शैली एव मार्मिक अनुभूतियो से ओत-प्रोत रहने के कारण वह साहित्य इतना लोकप्रिय हुआ कि प्रान्तीय, भाषाई एव भौगोलिक सीमाएँ स्वत ही समाप्त हो गईं। सर्वत्र उसका प्रचार हुआ। आज भी पूर्व से पश्चिम एव उत्तर से दक्षिण कही भी जाएँ, आचार्य कुन्दकुन्द सभी के अपने हैं। उनके लिए न दिशाभेद है, न भाषाभेद और न प्रान्तभेद, न वर्गभेद और न ही वर्ण-भेद।

इस प्रकार एक दाक्षिणात्य सन्त ने अपने एक भाषा-प्रयोग से समस्त राष्ट्र को एकबद्ध कर चमत्कृत कर दिया। आधुनिक प्रसग मे भाषा-प्रयोग के माध्यम से राष्ट्र को जोड़े रखने का इससे बडा उदाहरण और कहाँ मिलेगा?

ब्रजभापा की समृद्धि के लिए कुन्दकुन्द साहित्य के अध्ययन की अत्यावश्यकता

शौरसेनी-प्राकृत के क्षेत्र से यदि कुन्दकुन्द को पृथक् कर दिया जाय,

तो उसकी उतनी ही क्षति होगी, जितनी की शौरसेनी-प्राकृत से उत्पन्न ब्रजभाषा के महाकवि सूरदास को पृथक् कर देने से हिन्दी साहित्य की। शौरसेनी-प्राकृत तथा ब्रजभाषा सहित उत्तर भारत की प्रमुख आधुनिक भाषाओ का परस्पर मे माँ-बेटी का सम्बन्ध है। अत हिन्दी-साहित्य, विशेषतया ब्रजभाषा के साहित्य, को यदि उत्तरोत्तर समृद्ध बनाना है तो कुन्दकुन्द की भाषा एव साहित्य का अध्ययन एव प्रचार-प्रसार करना ही होगा।

5. कुन्दकुन्द-साहित्य का सास्कृतिक मूल्याकन

जैसा कि पूर्व मे कहा जा चुका है कि आचार्य कुन्दकुन्द युग-प्रधान के रूप मे माने गए हैं। उन्होने मानव-जीवन को अमृत-रस मे सिचन करने हेतु अध्यात्म-रस का जैसा अजस्र स्रोत प्रवाहित किया, वह भारतीय-चिन्तन के क्षेत्र मे अनुपम है। जीवन एव जगत् तथा जड एव चेतन का गम्भीर अध्ययन, मानव-मनोविज्ञान का अद्भुत विश्लेपण और प्राणिमात्र के प्रति उनकी अविरल करुणा की भावना अभूतपूर्व है। यही कारण है कि प्राच्य एव पाश्चात्य चिन्तको ने उन्हे मानवता का महान् प्रतिष्ठाता माना है।

आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने लगभग छयान्नवे वर्ष के आयुष्य मे पूर्वोक्त अनेक रचनाओ का प्रणयन किया, जिनका मूल विषय द्रव्यानुयोग एव चरणानुयोग है। यद्यपि इस प्रकार का साहित्य विचार-प्रधान होने के कारण बहुत अधिक लोकप्रिय नही होता क्योकि सामान्य-जनो का उसमे सहज-प्रवेश नही हो पाता। किन्तु कुन्दकुन्द की यह विशेषता है कि उन्होंने अपनी समस्त रचनाओ मे इतनी सरसता एव मधुरता घोल दी और उसमे समकालीन लोक-प्रचलित सरल भाषा और दैनिक लौकिक जीवन के उदाहरण-प्रसगों से उसे इस प्रकार सनाथ किया है कि आबाल-वृद्ध नर-नारी सभी उसका रसास्वादन कर अघाते नही।

इसमे सन्देह नहीं कि पिछले लगभग 4-5 दशको मे कुन्दकुन्द साहित्य का विस्तृत अध्ययन, तुलनात्मक चिन्तन एव मनन तथा शोध और प्रकाशन हुआ है। किन्तु इन अध्ययनो का मुख्य दृष्टिकोण दर्शन एव अध्यात्म तक

ही सीमित रहा है। यह आश्चर्य का विषय है कि अभी तक अध्येताओ का ध्यान कुन्दकुन्द-साहित्य के सास्कृतिक मूल्याकन की ओर नही गया। अत कुन्दकुन्द की रचनाओ मे उपलब्ध कुछ भौगोलिक एव सास्कृतिक सन्दर्भों पर यहाँ प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जा रहा है। यह तथ्य है कि कोई भी कवि साहित्य-लेखन के पूर्व अपने चतुर्दिक व्याप्त जड और चेतन का गम्भीर अध्ययन ही नही करता, वल्कि उससे साक्षात्कार करने का प्रयत्न भी करता है। तभी वह अपने कवि-कर्म मे सर्वांगीणता तथा चमत्कार-जन्य सिद्धि प्राप्त कर पाता है। आचार्य कुन्दकुन्द के साहित्य का अध्ययन करने से यह वात स्पष्ट हो जाती है।

प्रस्तुत अध्ययन के क्रम मे इस वात को ध्यान मे रखना आवश्यक है कि यद्यपि कुन्दकुन्द ने प्रसग-प्राप्त लौकिक तथ्यो के सकेत अथवा उल्लेख भले ही विध्यर्थक न किये हो और वे निषेधार्थक ही हो, फिर भी उन्होने अपने सिद्धान्तो के स्पष्टीकरण हेतु कुछ लौकिक शव्दावलियो एव उदाहरणो को प्रस्तुत किया है और सस्कृत-टीकाकारो ने कुन्दकुन्द के हार्द को ध्यान मे रखते हुए ही उनका विश्लेषण किया है। यहाँ पर सन्दर्भित सामग्री का उपयोग केवल यह वतलाने के लिए किया जा रहा है कि कुन्दकुन्द एकागी नही, वहुज्ञ थे। दार्शनिक एव आध्यात्मिक क्षेत्र मे उनकी जितनी पैठ थी, लौकिक ज्ञान मे भी उतनी ही पैठ थी। अत उनकी रचनाओ मे प्राप्त कुछ लौकिक सन्दर्भों पर आधुनिक परिप्रेक्ष्य मे यहाँ सक्षिप्त प्रकाश डाला जा रहा है—

समकालीन भारतीय भूगोल एव प्राचीन जैन तीर्थभूमियाँ

आचार्य कुन्दकुन्द के 'दशभक्त्यादि-सग्रह' मे सग्रहीत निर्वाण-काण्ड को ही लिया जाय, उसमे उन्होंने समकालीन देश, नगर, नदी एव पर्वतो का गेय-शैली मे जितना सुन्दर अकन किया है, वह अपूर्व है।[1] जैन-तीर्थो के इतिहास की दृष्टि से तो उसका विशेष महत्त्व है ही, प्राच्य-भारतीय भूगोल की दृष्टि से भी वह कम महत्त्वपूर्ण नही। यह ध्यातव्य है कि आचार्य

1. निर्वाणकाण्ड, गाथा 1—18

कुन्दकुन्द ने परम्परा प्राप्त जैन तीर्थ-भूमियो के रूप मे जिस भारतीय भूगोल की जानकारी दी है, वह ईसा पूर्व की प्रथम सदी की है। उन्होने पर्वतराज हिमालय के गर्त्रोन्नत भव्य-भाल कैलाश पर्वत से लेकर जम्मू कश्मीर तक तथा गुजरात के गिरनार, दक्षिण के कुन्थलगिरि, पूर्वी भारत के सम्मेदगिरि तथा दक्षिण-पूर्व की कोटिशिला के चतुष्कोण के बीचोबीच लगभग 40 प्रधान नगरो, पर्वतो, नदियो एव द्वीपो के उल्लेख किए हैं। उसका वर्गीकरण निम्न प्रकार किया जा सकता है—

उत्तर भारत—हस्तिनापुर, वाराणसी, मथुरा एव अहिच्छत्रा (नगरी), तथा अष्टापद (कैलाश-पर्वत)।

पश्चिम भारत—लाटदेश, पलहोडी, (वर्तमान फलौदी), वडग्राम, ऊर्जयन्त (गिरनार पर्वत), गजपन्था, शत्रुजयगिरि, तुगीगिरि (पर्वत) आदि।

मध्य भारत—अचलपुर, वडवानी, वडनगर (नगर), मेढगिरि, पावागिरि, सिद्धवरकूट, चूलगिरि, रेशिन्दीगिरि, द्रोणगिरि, सोनागिरि, चेलना नदी एव रेवा नदी।

पूर्व भारत—चम्पापुरी, पावापुरी, सम्मेदशिखर, लोहागिरि (लोहरदग्गा)।

दक्षिण भारत—कलिंग देश, वशस्थल, तारवर (नगर), कुन्थलगिरि, कोटिशिला, नागह्रद।

(सम्भवत) पश्चिमोत्तर भारत—(जो आजकल पाकिस्तान मे है) पोदनपुर, आशारम्य।

कुन्दकुन्द एव कालिदास

भारत पर चीनी आक्रमण एवं पण्डित नेहरू के कथन के सन्दर्भ मे—

इस प्रसग मे यहाँ यह ध्यातव्य है कि पिछले समय सन् 1962 मे जब चीन ने भारत पर पहला आक्रमण किया था और हिमालय के कुछ भाग को उसने चीनी-क्षेत्र घोषित किया था, तब तत्कालीन प्रधानमन्त्री प० जवाहर लाल नेहरू ने बहुत ही ओजस्वी स्वर मे महाकवि कालिदास (5वी सदी) की "अस्त्युत्तरस्या दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराज '

(कुमारसम्भव 1/1) नाम की पक्ति का उल्लेख किया था और उसे एक प्रामाणिक दस्तावेज के रूप मे प्रस्तुत कर चीन-सरकार के दावे को गलत वताकर हिमालय के कण-कण पर भारतीय स्वामित्व की घोपणा की थी।

कालीदास के पूर्ववर्ती आचार्य कुन्दकुन्द (ई० पू० 12) द्वारा किया गया अष्टापद (कैलाश-पर्वत) का उल्लेख तो उक्त प्रसग मे सम्पूर्ण हिमालय पर भारतीय-स्वामित्व का कालिदास से भी प्राचीनतम सवल प्रमाण सिद्ध होता है।

उक्त जैनतीर्थों के चतुर्दिक विस्तार मे इस तथ्य पर भी प्रकाश पडता है कि जैनधर्म भारतव्यापी था। सार्वजनीन, सरचनात्मक एव समन्वयात्मक होने तथा राष्ट्रीय एकता एव अखण्डता का हामी होने के कारण वह लोकप्रिय धर्म के रूप मे सर्वत्र स्वीकृत था।

राजनीति सम्वन्धी सन्दर्भ

आचार्य कुन्दकुन्द का यद्यपि राजनीति से किसी भी प्रकार का सम्वन्ध न था, किन्तु समाज एव राष्ट्र की गतिविधियो से सन्त एव साहित्यकार जाने या अनजाने ही प्रभावित होते रहते हैं। इस दृष्टि से यदि विचार किया जाए तो कुन्दकुन्द ने जिस राजनैतिक शब्दावली का प्रयोग अपने उदाहरण-प्रसगो मे किया है वह सम्भवत निम्नलिखित ऐतिहासिक एव राजनैतिक घटनाओ का प्रभाव प्रतीत होता है—

कुन्दकुन्द साहित्य मे सम्राट सम्प्रति, खारबेल, शुग एव शक राजाओ के कार्यकलापो की झाँकी

1 अन्तिम मौर्य-सम्राट सम्प्रति (ई० पू० 216-207) के विपय मे यह कहा जाता है कि उन्होने समग्र भारत मे ही नही, वल्कि सारे एशिया मे भी जैनधर्म का प्रचार किया था तथा वहाँ मन्दिर, मठ एव चैत्यालय वनवाए थे। कुन्दकुन्द को उक्त मौर्य सम्राट के कार्यों की जानकारी अवश्य रही होगी, ऐसा उनके अष्टपाहुड साहित्य से आभास मिलता है।

2 कुन्दकुन्द से लगभग 6-7 दशक पूर्व ही कलिंग के चेदिवशी

जैन सम्राट खारवेल ने उत्तर एव दक्षिण भारत पर पराक्रमपूर्ण आक्रमण भी किए थे तथा जैनधर्म का प्रचार भी किया था।

इसके अतिरिक्त उसने अखिल भारतीय स्तर पर एक विराट जैन-सम्मेलन का कुमारीपर्वत (उदयगिरि-खण्डगिरि) पर आयोजन किया था और उसमे उसने चतुर्विध सघ को ससम्मान आमन्त्रित कर मौर्यकाल मे उच्छिन्न चौसट्ठी अग-सप्तक के चतुर्थ भाग को पुन प्रस्तुत करवाया था। मन्त्रमुग्ध कर देने वाले उस सम्मेलन के वातावरण से उसे जीव एव देह के भेद-विज्ञान का अनुभव हो गया था।

खारवेल जैसे पराक्रमी सम्राट के सहसा ही हृदय-परिवर्तन सम्बन्धी इस तथ्य ने समस्त जैनधर्मानुयायियो पर आगामी अनेक वर्षों तक अमिट छाप छोडी होगी।

कुन्दकुन्द भी खारवेल के उक्त राजनैतिक एव जैनधर्म प्रचार सम्बन्धी कार्यों से अवश्य ही सुपरिचित रहे होंगे और सम्भवत प्रेरित होकर छिन्न-भिन्न दृष्टिवादाग के उद्धार का प्रयत्न भी उन्होने किया होगा। इस तथ्य से इस बात की भी पुष्टि होती है कि कुन्दकुन्द ने षट्खण्डागम के प्रथम तीन खण्डो पर 'परिकर्म' नाम की टीका लिखी होगी, जो या तो राजनीतिक उथल-पुथल मे लुप्त हो गई अथवा देश विदेश के किसी प्राचीन शास्त्र-भण्डार मे छिपी पडी है और अपने उद्धार की प्रतीक्षा कर रही है।

3 कुन्दकुन्द काल मे शुग-राज्यकाल की समाप्ति हुई और पश्चिमोत्तर भारत मे शको के आक्रमण प्रारम्भ हुए। वे क्रमश दक्षिण-भारत की ओर बढते गए। इन आक्रमणो के कारण भारत का सामाजिक एव राजनीतिक जीवन अस्त-व्यस्त हो गया था। श्रमणत्व की सुरक्षा एव उसके उद्धार के लिए चिन्तित आचार्य कुन्दकुन्द को इसकी जानकारी अवश्य रही होगी, ऐसा अष्टपाहुड-साहित्य एव रयणसार के अध्ययन से प्रतीत होता है। आध्यात्मिक सन्त होने के कारण भले ही उनका राजनयिको से सम्पर्क न रहा हो, किन्तु राजतन्त्र की परम्पराओ एव व्यवस्थाओ सम्बन्धी जो सार्वजनिक प्रभावक शब्दावलियाँ थी, वे प्रबुद्ध सामाजिको एव साहित्यकारो को ज्ञात रही होगी। यही कारण है कि कुन्दकुन्द ने अध्यात्म के गहरे

सिद्धान्तो को स्पष्ट करते हेतु प्रसगवश यत्र तत्र उक्त शब्दावलियो को उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत किया है।

हमारा दृढ विश्वास है कि कुन्दकुन्द-साहित्य का यदि ईसा-पूर्व के भारतीय इतिहास के आलोक मे गहन अध्ययन किया जाए, तो उसमे सम्राट सम्प्रति, सम्राट खारवेल, शुग एव शक वशी राजाओ के कार्य-कलापो की झाँकी मिल सकती है। इस दिशा मे प्रयत्न होना चाहिए।

कुन्दकुन्द साहित्य मे राजतन्त्रीय प्रणाली की झलक

राजतन्त्रीय प्रणाली के निम्न उल्लेख महत्त्वपूर्ण हैं—

"रज्जं पहाणहीणं पतिहीणं देसगामरट्ठवलं।।" रयण० 72

अर्थात् राजा के विना राज्य एव सेनापति के बिना देश, ग्राम, राष्ट्र एव सैन्य सुरक्षित नही रह सकते।

राजतन्त्रीय प्रणाली मे दो शत्रुओ का युद्ध रणक्षेत्र मे आमने-सामने आकर लडा जाता था, लुका-छिपी से नही। उसका भी अपना एक अनुशासन था, जिसका दोनो पक्ष पालन करते थे। कुन्दकुन्द का यह कथन उसी का सकेत है—

जो कोडिए ण जिप्पइ सुहडो सगामएहिं सव्वेहिं।
सो किं जिप्पइ इक्कि णरेण सगामए सुहडो ।। मोक्ख० 22

अर्थात् जो सुभट सग्राम मे कोटि-कोटि योद्धाओ के द्वारा भी नही जीता जाता, वह क्या किसी एक योद्धा के द्वारा जीता जा सकता है?

इसी प्रकार 'सुहडो सूरत्त विणा'[1] (शूरवीरता के विना योद्धा) तथा 'सालविहीणो राओ'[2] (दुर्ग के विना राजा) आदि उक्तियाँ भी उक्त प्रणाली को सूचित करती हैं। अन्य राजनीतिक शब्दावलियाँ इस प्रकार हैं—

सप्तागराज्य[3]

कौटिल्य-अर्थशास्त्र[4] के अनुसार राज्य के सात अग इस प्रकार

1 रयणसार, गा०- 65
2 वही, गा०-80
3 रयणसार, गाथा-20
4 कौटिल्य अर्थशास्त्र, 6/1

हैं—दुर्ग अर्थात् शुल्क, दण्ड एव पौतव तथा नगराध्यक्ष, लक्षणाध्यक्ष, मुद्राध्यक्ष, सुराध्यक्ष, शूनाध्यक्ष, सूत्राध्यक्ष, स्वर्णाध्यक्ष एव शिल्पी आदि से वसूल किया जाने वाला धन ('दुर्ग' कहलाता था),

(2) राष्ट्र— कृषि, व्यापार (जलीय एव स्थलीय), भूमि का सर्वेक्षण आदि,

(3) खनि—अर्थात् सोना, चाँदी, लोहा, ताँवा आदि खनिज पदार्थ,

(4) सेतु—यातायात के साधनो की सुविधा हेतु पुल तथा बाँध आदि,

(5) वन-सम्पदा,

(6) व्रज—गो-सम्पदा, एव

(7) व्यापार।

षडंगवल[1]

अर्थात् 6 अगो से युक्त सेना। ये वल निम्न प्रकार है—

(1) सारभूत-बल, (2) पदाति-बल, (3) अधिकारी वल, (4) सामान्य-सेवक-श्रेणी-वल, (5) मित्र-बल एव (6) आटविक वल।

अपनी सुरक्षा के लिए किसी भी राष्ट्र के लिए उक्त छह्प्रकार के वलो की आवश्यकता रहती थी।[2]

चतुरगिणी सेना

अर्थात् 4 प्रकार की सेना जो इस प्रकार होती थी—

(1) गजसेना, (2) रथसेना, (3) अश्वसेना एव (4) पदाति-(पैदल) सेना।

धनुर्विद्या[3]

प्रतीत होता है कि कुन्दकुन्द के समय मे युद्धो मे अन्य शस्त्रास्त्रो के-साथ-साथ धनुर्विद्या का प्रयोग विशेष रूप से होता था।

---

1 रयणसार, गाथा-19

2 बारसअणुवेक्खा, गाथा-10

3 वोधपाहुड, गाथा 20,22

वस्त्र-प्रकार

कुन्दकुन्द भले ही अखण्ड दिगम्बर मुनि थे, किन्तु एक उदाहरण मे देखिए, उन्होने अपने समय के वस्त्रो का कैसा वर्गीकृत उल्लेख किया है ।[1] उनके अनुसार उस समय भारत मे पाँच प्रकार के वस्त्रो का प्रचलन था—

(1) अडज (अर्थात् कीडो द्वारा निर्मित धागे के बने हुए अर्थात् रेशमी वस्त्र) ।

(2) वोडज (अर्थात् कपास द्वारा निर्मित सूती वस्त्र) ।

(3) रोमज (अर्थात् जानवरो के रोम से बनाए गए ऊनी वस्त्र) ।

(4) वक्कज (अर्थात् पेड की छाल द्वारा बनाए गए वल्कल वस्त्र) ।

(5) चर्मज (अर्थात् मृग, व्याघ्र आदि के चर्म से बनाए गए वस्त्र) ।

एक स्थान पर आचार्य कुन्दकुन्द ने सुई-तागे का भी लौकिक उल्लेख किया है[2] । इससे सकेत मिलता है कि कुन्दकुन्द-काल मे सिलाई तथा कढाई की हस्तकला पर्याप्त लोकप्रिय थी और घरेलू उद्योग-धधो मे उसका प्रमुख स्थान था ।

शिक्षा

प्रारम्भिक शिक्षण के लिए कवि ने बाल्यावस्था को उपयुक्त बतलाया है[3] । उन्होंने कहा है कि समाज के बच्चो के लिए प्रारम्भ मे ही निम्न विषयो का शिक्षण देना चाहिए—

(1) व्याकरण (भाषा के शुद्ध प्रयोग एव भाषा वैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से),

(2) छन्द (पद्यों के वर्ण एव मात्रा के वैज्ञानिक अध्ययन, सस्वर पाठ एव उसे सरस और गेय बनाने की दृष्टि से) ।

---

1 भावपाहुड, गाथा-79-81 (सस्कृत टीका मे दृष्टव्य)

2 सूत्रपाहुड, गाथा-3

3 शीलपाहुड, गाथा-15-16

(3) न्याय (तर्कणा-शक्ति की अभिवृद्धि के लिए),
(4) धर्म (जीवन मे आचार एव अध्यात्म के जागरण के लिए),
(5) दर्शन (विचारो की गहन अनुभूति के लिए),
(6) गणित (राष्ट्रीय एव सामाजिक व्यवहार के सचालन के लिए)।

इसी प्रकार निक्षेप, नय, प्रमाण, शब्दालकार,नाटक, पुराण आदि के अध्ययन पर भी जोर दिया जाता था[1]।

लगता है कि कुन्दकुन्द के समय मे लेखन-सामग्री आज के समान प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध नही थी। स्याही एव मोरपंख अथवा काष्ठ-निर्मित कलम सम्भवत व्यय-साध्य होने के कारण विशिष्ट-कोटि के लेखको को ही उपलब्ध रहती होगी। किन्तु सामान्य जनो के लिए खडिया (chalk) से दीवाल अथवा पत्थर पर लिखने की परम्परा थी।[2]

विविध दार्शनिक मत

आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने वर्णन-प्रसगों मे समकालीन प्रचलित विविध दार्शनिक मतो के उल्लेख किए हैं। उनसे विदित होता है कि उन्होने उनका भी अध्ययन किया था। उस समय भारत मे 363 दार्शनिक मत प्रचलित थे।[3] उनका वर्गीकरण कुन्दकुन्द ने इस प्रकार किया है —

1 क्रियावादी—180 मत
2 अक्रियावादी—84 मत
3 अज्ञानी— 67 मत
4 वैनयिक— 32 मत

363 मत

दु ख-प्रकार

आचार्य कुन्दकुन्द का कथन है कि "यह ससार केवल दु खो का ही घर

---

1 रयणसार, गाथा 143
2 समयसार, गाथा 356, 365
3 भावपाहुड, गाथा-135

है। यह शरीर केवल रोगों का ही घर है। ससार के सभी सुख क्षणिक हैं, इनसे मुक्ति प्राप्त कर शाश्वत-सुख प्राप्त करने का प्रयत्न करो।" ऐसे सासारिक दु खो का वर्गीकरण उन्होंने इस प्रकार किया है[1] —

1 आगन्तुक (अर्थात् दूसरो के वे कारण जो व्यक्ति को दु खी वना दें)।
2 मानसिक (अर्थात् जो स्वय अपने पारिवारिक कारणो से उत्पन्न हो)।
3 साहजिक (अर्थात् जो अन्य दु खी प्राणियो को देखकर उत्पन्न हो)
4 शारीरिक (अर्थात् वात, पित्त एव कफ के कुपित पो जाने से उत्पन्न वीमारियो के कारण जो दु ख उत्पन्न हो)।

शारीरिक रोग एव औषधियाँ

शारीरिक रोगो के विषय मे कुन्दकुन्द ने लिखा है कि शरीर के प्रत्येक अगुल मे 96-96 रोग हो सकते हैं।[2] इन वीमारियो के इलाज के लिए उन्होंने पाँच प्रकार की औषधियाँ भी बतलाई हैं,[3] जिनका वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है—

(1) आमौपधि, (2) जल्लौपधि, (3) खेल्लौषधि, (4) विप्रुपौषधि, एव (5) सर्वौंषधि।

कवि ने एक स्थान पर शारीरिक सरचना का भी 3-4 गाथाओ मे सुन्दर वर्णन किया है।[4]

व्यायाम

कवि ने शारीरिक शक्ति को वढाने के लिए व्यायाम की विधि का

1. भावपाहुड, गाथा-11
2 रयणमार गाथा 32-34 तथा भावपाहुड गाथा 25-27, 37, 39, 42
3 भक्त्यादि सग्रह, गाथा 5/16 (सस्कृत टीका मे दृष्टव्य)
4 भावपाहुड, गाथा 39-42 तथा वारस-अणुवेक्खा, गाथा 43-45

सकेत किया है। उसके अनुसार शरीर मे तेल लगाकर धूलि वाले स्थान मे दण्ड-बैठक करना एव मुग्दर आदि अस्त्रो के द्वारा व्यायाम करना, उसके साथ ही साथ केला, तमाल, अशोक आदि वृक्षो के साथ अपनी शक्ति को आजमाने की प्रथा का सकेत दिया है।[1]

खाद्य एव पेय पदार्थ

भोजन-वर्णन मे आचार्य कुन्दकुन्द ने किसी विशेष अनाज का उल्लेख नही किया है लेकिन तिल[2] का उल्लेख अनेको बार किया है। इससे प्रतीत होता है कि उस समय भोजन मे तिल अपना विशेष स्थान रखता था। तिल बहुत ही गुणकारी पदार्थ होने के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि तिल के तेल तथा तिल के बने हुए मोदक आदि व्यञ्जनो का प्रयोग सार्वजनीन रहा होगा। पेय पदार्थों मे उन्होंने गुड मिश्रित दूध[3] और इक्षुरस[4] का उल्लेख किया है। श्रमण सस्कृति मे इक्षुरस को अत्यन्त स्वास्थ्यवर्धक एव पवित्र पेय माना गया है। आदिनाथ तीर्थंकर ने प्रथम पारणा मे इक्षुरस का ही आहार ग्रहण किया था।

उद्योग-धन्धे

उद्योग-धन्धो मे कवि ने स्वर्णशोधन विधि[5] रत्ननिर्माण[6], विषौषधि-निर्माण[7], आभूषण[8]-निर्माण, कृषि के यन्त्र[9], रहट बनाने तथा दात्र (हँसिया)[10]

1 समयसार, गाथा-236-246
2 सुत्तपाहुड, गाथा-18, बोधपाहुड, गाथा-54, शीलपाहुड, गाथा-24
3 भावपाहुड, गाथा-137
4 शीलपाहुड, गाथा-24
5 मोक्षपाहुड, गाथा-24, शीलपाहुड, गाथा-9
6 प्रवचनसार, गाथा-30, पचास्तिकाय, गाथा-33
7 शीलपाहुड, गाथा-21
8 समयसार, गाथा-130-131, प्रवचनसार, गाथा 10
9 शीलपाहुड, गाथा-26
10 पचास्तिकाय, गाथा-48

निर्माण, भवन[1] निर्माण, मूर्ति[2] निर्माण, मोम निर्माण[3] आदि के उल्लेख किए है।

मनोरजन के साधन

मनोरजन के साधनो मे कवि ने गोष्ठी[4] एव जन्त्र[5] (अर्थात् चौपड) का उल्लेख किया है। इससे प्रतीत होता है कि उस समय विभिन्न प्रकार की गोष्ठियो का आयोजन उसी प्रकार किया जाता था, जिस प्रकार कि आज-कल कवि-सम्मेलन, सगीत-सम्मेलन या साहित्यिक सम्मेलनो का आयोजन किया जाता है।

कुन्दकुन्द-साहित्य मे कथा-वीजो के स्रोत

आचार्य कुन्दकुन्द ने यद्यपि कथा-साहित्य अथवा प्रथमानुयोग-साहित्य नही लिखा, क्योकि उनका समाज प्रवुद्ध था। कथा-कहानियो के माध्यम से सिद्धान्तो को समझाने की आवश्यकता तो केवल मन्द-बुद्धि वाले लोगो के लिए ही होती है। फिर भी कुन्दकुन्द ने कथाओ का वर्गीकरण अवश्य किया है। उनके अनुसार ससार की कथाओ को 4 वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है[6] —

(1) भक्त-कथा—(भक्ति की प्रेरणा जागृत करनेवाली कथा)
(2) स्त्री-कथा—(स्त्रियो के प्रति आसक्ति जागृत करनेवाली कथा)
(3) राज-कथा)—(कपट-कूट एव राजनीति का विश्लेपण करने वाली कथा)
(4) चोर-कथा—(चौर्य-कला का निरूपण करनेवाली कथा)

---

1 वोधिपाहुड, गाथा 42-43
2 वोधिपाहुड, गाथा-3-4
3 भक्त्यादिसग्रह 2/10
4 प्रवचनसार, गाथा-66
5 लिंगपाहुड, गाथा-10
6 वारसअणुवेक्खा, गाथा-53

कुन्दकुन्द के समय तक जैन-कथा एव पुराण-साहित्य के लेखन का प्रारम्भ नही हुआ था। किन्तु उन्होने आगत-परम्परा के अनुसार कथा-बीजो के सकेत सैद्धान्तिक उदाहरणो के प्रसग मे अवश्य दिए हैं, जो परवर्ती कथा-साहित्य के लिए स्रोत-सामग्री के प्रमुख आधार बन सके। ऐसे कथा-बीजो मे—आतापन योगी बाहुबली, निदान मात्र से दुखी वशिष्ठ मुनि, तथा मधुपिंग मुनि, दण्डक नगर को जला डालने वाले बाहुमुनि, रत्नत्रय-विहीन द्वैपायन मुनि, विशुद्ध-हृदय वीर शिवकुमार, अभव्यात्मा भव्यसेन, विशुद्ध-परिणामी शिवभूति मुनि एव अशुद्ध परिणामी शालिसिक्थ मत्स्य[1] तथा विषय-लोलुपी रुद्र[2] आदि प्रमुख हैं।

उक्त कथा-पात्रो के नामोल्लेख मात्र ही कवि ने प्रस्तुत किए हैं। किन्तु आगे चलकर महाकवि हरिषेण, रामचन्द्र मुमुक्षु, ब्रह्म० नेमिदत्त एव महाकवि रइधू आदि कवियो ने इन कथा-बीजो को साहित्यिक शैली मे पर्याप्त विस्तार देकर उन्हें अत्यन्त रोचक बना दिया है।

सदाचरण का आदेश

बहुत सम्भव है कि तत्कालीन गृहस्थो एव साधुओ मे कदाचार को देखकर आचार्य कुन्दकुन्द दखी भी हो। क्योकि उन्होंने लिंग-पाहुड की अनेक गाथाओ मे साधुओ को शास्त्रोक्त-पद्धति से आचरण करने का आदेश दिया है।

चोरी-डकैती एव दण्ड-व्यवस्था

कुन्दकुन्द ने राहगीरो पर पडने वाली डकैती की भी चर्चा[3] की है एव चोरी-डकैती मे पकडे गए चोरो-डकैतो के पैरो मे पडी हुई बेडी[4] का भी

---

1 भावपाहुड, गाथा-44-53, 88
2 शीलपाहुड, गाथा-30-31
3 समयसार, गाथा-59-60
4 समयसार, गाथा-146

उल्लेख किया है। इससे चोरी एव डकैती होने तथा इस प्रकार के घृणित समाज-विरोधी कार्य करने वालो के लिए बेडी-वर्णन के माध्यम से कठोर-दण्ड-व्यवस्था का भी सकेत किया है। लिग-पाहुड मे एक शिथिलाचारी साधु की भर्त्सना हेतु बँधुआ मजदूर का उदाहरण दिया गया है। विदित होता है कि कुन्दकुन्द-काल मे बँधुआ-मजदूरी की प्रथा थी।

इस प्रकार कुन्दकुन्द की रचनाओ मे उपलब्ध राजनीतिक, सामाजिक एव सास्कृतिक सन्दर्भो पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया। स्थानाभाव के कारण यहाँ केवल एक सक्षिप्त झाँकी मात्र प्रस्तुत की गई है। यदि मधुकरी-वृत्ति से उनका पूर्ण सग्रह कर उसका समकालीन भारतीय इतिहास एव सस्कृति के परिप्रेक्ष्य मे तुलनात्मक अध्ययन किया जाय, तो एक प्रामाणिक शोध-प्रबन्ध तैयार हो सकता है।

६. आचार्य कुन्दकुन्द . आधुनिक भौतिक विज्ञान के आइने मे

जैनाचार्यों द्वारा प्रतिपादित द्रव्य-व्यवस्था एव उसका वैशिष्ट्य

वैज्ञानिक-साहित्य की दृष्टि से आचार्य कुन्दकुन्द के दो ग्रन्थ विशेष महत्त्वपूर्ण हैं—पचास्तिकायसग्रह एव समयसार। लेखक ने इन ग्रथो मे परम्परा-प्राप्त ज्ञान-विज्ञान का सुन्दर विश्लेषण किया है। उनके कुछेक सिद्धान्त तो आधुनिक वैज्ञानिक खोजो से अभी भी बहुत आगे हैं। जैसे जीव एव पुद्गल-द्रव्य का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन। आधुनिक भौतिक-शास्त्री जिस षट्कोणी 'क्वार्क मॉडल' की खोज मे व्यस्त है तथा जिसके अभी तक के स्थापित सिद्धान्तो मे वे एकस्वर नही हो सके हैं, आचार्य कुन्दकुन्द एव उनके परवर्ती सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्य सहस्राब्दियो पूर्व ही अपनी रचनाओ मे उनका सुस्पष्ट विश्लेपण कर चुके हैं।

कुन्दकुन्द आदि अनेक आचार्यों द्वारा प्रतिपादित कुछ विचार आधुनिक विज्ञान के समकक्ष भी हैं, जैसे पुद्गल-परमाणुवाद। जवकि कुछ सिद्धातो की कही-कही आशिक रूप में समकक्षता सिद्ध हुई है। जैसे धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य एव आकाश-द्रव्य। आगे इनकी सक्षिप्त चर्चा की जायगी।

द्रव्य (Substancc)-परिभाषा

कुन्दकुन्द ने विश्व मे व्याप्त समस्त द्रव्यो (Substances) को मुख्य रूप से दो भागो मे विभक्त किया है—जीव एव अजीव अथवा चेतन एव जड (Soul and Non-soul)। द्रव्य की परिभाषा मे उनका कथन है

कि उत्पाद, व्यय एव ध्रौव्य अथवा गुण एव पर्याय वाला सत् (Existence) ही द्रव्य (Substance) है[1]। दूसरे शब्दो मे यह भी कहा जा सकता है कि जैन-दर्शन 'सत्' को 'द्रव्य' मानता है और वह 'सत्' उत्पाद, व्यय एव ध्रौव्य का समन्वयात्मक रूप होता है।

भ्रम-निवारण

उक्त मान्यता मे विरोधाभास का भ्रम अवश्य होने लगता है कि उत्पत्ति, विनाश एव ध्रुवत्व जैसे परस्पर-विरोधी गुण एक साथ कैसे रह सकते हैं ? प्राचीन जैनाचार्यों ने एक लौकिक उदाहरण द्वारा इस भ्रम को दूर किया है। उनके अनुसार स्वर्ण के ढेले को गलाकर जब गले का हार बना दिया जाता है, तब उसमे तीनो गुण एक साथ देखे जा सकते हैं—(1) गले के हार का निर्माण (उत्पत्ति), (2) स्वर्ण के ढेले का गलना (व्यय—विनाश), एव (3) दोनो अवस्थाओ मे स्वर्णत्व का समान रूप से रहना (ध्रौव्य)। इस प्रकार द्रव्य मे उत्पादादि गुण एक साथ रह सकते है[2]। उनमे परस्पर मे कोई विरोध नही।

जैन-दर्शन के अनुसार सभी द्रव्य नित्य, अरूपी एव अवस्थित है[3]।

द्रव्य और आधुनिक विज्ञान

द्रव्य के उक्त लक्षण का यदि आधुनिक-विज्ञान की मान्यताओ से तुलनात्मक अध्ययन किया जाय, तो लगभग एकरूपता सिद्ध होती है। आधुनिक-विज्ञान तीन प्रमुख सिद्धान्त मानता है—(1) स्थिति (Conservation of Energy), (2) वस्तु विनाशित्व (Law of Destructibility of Matter) तथा शक्ति-रूपान्तर (Transformation of Energy)। इन मान्यताओ से यह स्पष्ट है कि विनाशशील पदार्थों मे भी

---

1. पचास्तिकाय, गाथा 8-10
2. पचास्तिकाय, गाथा 11-15
3. 'नित्यावस्थितान्यरूपाणि', तत्त्वार्थसूत्र 5/4

ध्रुवत्व (Permanence) गुण वर्तमान रहता है। इस प्रसग मे Democritus का यह कथन विचारणीय है[1]—

"Nothing can never become something and something can never become anything"

जीव-द्रव्य और आधुनिक विज्ञान

प्राचीन एव नवीन प्रयोगशालाओ मे

आचार्य कुन्दकुन्द आदि ने जीव को द्रव्य माना है और बताया है कि आत्मा, चैतन्य एव ज्ञान ये सभी जीव के पर्यायवाची नाम हैं। उसे अजर-अमर भी कहा गया है। व्यवहार मे जो यह कहा जाता है कि 'गुणसेन मर गया' वह लोक-व्यवहार की दृष्टि से तो ठीक है, किन्तु निश्चयनय से 'गुणसेन' को मृत कहना उपयुक्त नही, क्योकि आत्मा तो निश्चय ही अजर-अमर है। हाँ, यह कहा जायगा कि 'गुणसेन की मनुष्य-पर्याय बदल गई।'

इस जीववाद अथवा आत्मवाद पर प्राचीनकाल से ही विस्तृत ऊहापोह चलता आ रहा है। विचारको में कभी-कभी अपने मत के समर्थन मे उग्रता भी देखी गई है। उनमे परस्पर मे विभाजन भी होता रहा। एक पक्ष आत्मवादियो मे बँट गया और दूसरा अनात्मवादियो मे। अपने-अपने पक्ष के समर्थन मे उन विचारको ने पिछली लगभग दो सहस्राब्दियो मे एक विशाल दार्शनिक साहित्य का निर्माण भी कर दिया। मूल समस्या का सर्व-सम्मत समाधान फिर भी दृष्टिगोचर न हो सका।

जीवात्म-विचार के क्षेत्र मे

जैनाचार्य आधुनिक विज्ञान से बहुत आगे

प्राकृत एव सस्कृत के जैन-साहित्य मे भी द्रव्य-वर्णन के प्रसग मे जीव-द्रव्य का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विचार किया गया है और उसकी विशेषता यह है कि

---

1. महावीरस्मृति ग्रन्थ, पृ० 117

सहस्राब्दियो के अनवरत चिन्तन के बाद भी जैन दार्शनिको मे मतभेद दृष्टिगोचर नही होता। कुन्दकुन्द ने जीव की परिभाषा देते हुए कहा है—

जीवो त्ति हवदि चेदा उवओगविसेसिदो पहू कत्ता।
भोत्ता य देहमत्तो ण हि मुत्तो कम्मसजुत्तो ।।पचास्ति 27

अर्थात् जीव ही आत्मा है, चैतन्यगुणवाला है, ज्ञान है, प्रभु (स्वतन्त्र) है, (कर्मों का-) कर्ता तथा भोक्ता है, स्वदेहप्रमाण है, अमूर्त तथा कर्मयुक्त है। समयसार मे कुन्दकुन्द ने इसे और भी स्पष्ट किया है। यथा—

अरसमरूवमगध अव्वत्तं चेदणागुणमसद्द ।
जाण अलिंगग्गहण जीवमणिद्दिट्ठसठाण ।। समय० 2/11

अर्थात् जो रसरहित, रूपरहित, गन्धरहित, इन्द्रियो द्वारा अगोचर, चेतनागुणयुक्त, शब्दरहित, इन्द्रियो द्वारा अग्राह्य एव निराकार है, उसे जीव जानो।

आधुनिक विज्ञान-जगत् ने भी जीवात्मा की खोज का अथक प्रयत्न किया है। उन्होने उसे देखने अथवा पकडने के लिए एक विशेष रूप से निर्मित सयन्त्र का प्रयोग भी किया, किन्तु असफलता ही हाथ लगी। एक बार उन्होने एक पारदर्शी टकी मे जीवित प्राणी को बन्द कर उसे चारों ओर से सील कर दिया। उसमे वह प्राणी तो मर गया किन्तु उसमे से निकले हुए जीव या आत्मा का कोई भी चिह्न कही भी दिखाई नही दिया।

कैकेय-नरेश राजा प्रदेशी एव श्रमणकुमार केशी का ऐतिहासिक आख्यान

यह कहना कठिन है कि आधुनिक वैज्ञानिको ने प्राचीन प्राकृत जैन साहित्य का अध्ययन किया या नही। यदि किया होता तो बहुत सम्भव है कि वे अपनी शक्ति, समय, एव द्रव्य के बहुत कुछ अपव्यय से बच जाते। क्योंकि आज से लगभग 2838 वर्ष पूर्व (अर्थात् ई० पू० 849 के आस पास) की एक बहुत ही रोचक घटना का वर्णन रायपसेणियसुत्त (रा- प्रश्नीयसूत्र) नामक जैनागम मे मिलता है। यह घटना कैकेय देश (जहां

की अयोध्या की महारानी कैकेयी थी), जो कि वर्तमान पेशावर, (पाकिस्तान) के आसपास का प्रदेश माना गया है, वहाँ का प्रदेशी (पएसी) नाम का राजा था, जो स्वभावत· ही हत्यारा, निर्दय एव नास्तिक था। एक बार उसके मन मे प्रश्न उठता है कि शरीर और आत्मा भिन्न हैं अथवा अभिन्न ? अपनी जिज्ञासा-पूर्ति के लिए उसने अनेक प्रकार के प्रायोगिक एव सैद्धान्तिक प्रयोग भी कर डाले।

एक बार वह चार कम्बोजी बलिष्ठ घोडो से जुते हुए रथ पर सवार होकर सेयाविया नगरी के उद्यान मे उस स्थान पर पहुँचा, जहाँ कि तीर्थंकर पार्श्वनाथ के साक्षात् शिष्य श्रमणकुमार केशी विराजमान थे। उनके दर्शन कर राजा प्रदेशी ने शरीर एव आत्मा की अभिन्नता के समर्थन मे उनके समक्ष अनेक तर्क प्रस्तुत किए। इन प्रयोगो सम्बन्धी राजा प्रदेशी की कथाएँ बडी ही रोचक, सरस एव विस्तृत है। उन्हें अविकल रूप मे स्थाना-भाव के कारण प्रस्तुत कर पाना शक्य नही, अत उनके मात्र साराश को सक्षेप मे प्रश्नोत्तर के रूप मे यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है[1]—

राजा प्रदेशी — अधार्मिक एव भ्रष्टाचारी व्यक्ति यदि नरक मे जाते है, तो वे वहाँ से अपनी विक्रिया ऋद्धि के बल पर मर्त्य-लोक मे आकर अपने परिवार के लोगो को धार्मिक जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा क्यो नही देते ? चूंकि ऐसा देखा नही गया, इसी से प्रतीत होता है कि परलोक भी नही है और शरीर और आत्मा अभिन्न ही हैं।

श्रमणकुमार केशी — नरक मे जाकर नारकी जीव स्वतन्त्र होकर विचरण नही कर सकते। पराधीनता के कारण, वे मर्त्यलोक मे नही आ सकते क्योकि वहाँ असुर जाति के देव पूर्व-भव स्मरण करा-करा कर परस्पर मे अन्य नार-कियो से कलह कराने मे ही उन्हे उलझाए रखते

---

1 रायपसेणिय-सुत्त, 233-267

हैं। अत हे राजन्, परलोक की सत्ता अवश्य है तथा शरीर एव आत्मा अभिन्न हो ही नही सकते। निश्चित रूप से वे भिन्न-भिन्न ही हैं।

राजा प्रदेशी धार्मिक सच्चरित्र लोग स्वर्ग मे जाकर विक्रिया-ऋद्धि से मर्त्यलोक मे शीघ्र ही आकर अपने परिवार के लोगो को अच्छे कार्य करने की प्रेरणा क्यो नही देते? चूँकि ऐसा देखा नही जाता, इसीलिए हे श्रमण कुमार, प्रतीत होता है कि परलोक भी नही है तथा शरीर एव आत्मा अभिन्न हैं।

श्रमणकुमार केशी स्वर्ग मे जाते ही प्राणी वहाँ के भोग-विलास मे इतने रम जाते हैं कि फिर उन्हे मर्त्यलोक मे लौटकर घूमने का समय नही मिलता। चाहकर भी आ नही पाते, क्योकि मर्त्यलोक मे उन्हे वहुत दुर्गन्ध आती है, इस कारण आना भी नही चाहते। किन्तु परलोक अवश्य है और शरीर एव आत्मा निश्चय ही भिन्न हैं।

राजाप्रदेशी एक जीवित अपराधी को लोहे की टकी मे वन्द कर देने तथा कुछ दिनो के वाद उसे निकालकर देखने से वह मरा हुआ पाया गया। टकी का परीक्षण करने मे ऐसा कोई द्वार या छिद्र नही पाया गया, जहाँ से उसका जीव निकला हो। यदि शरीर से जीव भिन्न होता, तो उसके निकलने का कोई-न-कोई सकेत या चिह्न अवश्य ही होता किन्तु उसके न मिलने से विदित होता है कि शरीर एव आत्मा अभिन्न है।

केशी जिस प्रकार अभेद्य-गुफा मे दरवाजा वन्द कर देने पर भी तेज वजते हुए नगाडे की आवाज, विना किसी तोड-फोड के सहज मे ही वाहर निकल आती है, उसी प्रकार प्राणी के मरने पर जीव (आत्मा) भी अप्रतिहत-गति से वाहर निकल जाता है। क्योकि

पर्वत, चट्टान एव लोहे की सुदृढ बन्द टकी भी उस अरूपी-आत्मा को निकलने से रोक नही सकती। अत हे राजन्, शरीर एव आत्मा निश्चय से भिन्न हैं।

राजा प्रदेशी एक सुदृढ अभेद्य लोहे की टकी मे जीवित चोर को बन्द कर दिया गया। उसमे वह तो मर गया, किन्तु उसके शरीर मे अनेक कीडे उत्पन्न हो गये। छिद्र-रहित उस टकी मे वे घुसे कहाँ से होगे ? उस अभेद्य टकी मे जीवो के गमनागमन के सकेत-चिह्न न मिलने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि शरीर एव आत्मा अवश्य ही अभिन्न हैं।

केशी जिस प्रकार, हे राजन्, अभेद्य लोहे की टकी मे चोर को बन्द कर देने तथा उसके मरने के बाद जिस प्रकार उसके जीव (आत्मा के निकलने का कोई चिह्न दिखाई नही पडता। उसी प्रकार उसके मृत-शरीर मे भी अप्रतिहत-गति से जीवो का प्रवेश हो जाता है और उन्हे भी कोई देख नही पाता। इसी से स्पष्ट है कि परलोक भी है तथा शरीर और आत्मा भिन्न ही हैं।

राजा प्रदेशी एक तरुण व्यक्ति जैसा कार्य कर सकता है, वैसा ही कार्य एक बालक नही कर सकता। जैसे, एक तरुण व्यक्ति पाँच बाण एक साथ छोड सकता है, किन्तु बालक निश्चित रूप से नही छोड सकता। इसी प्रकार हे श्रमणकुमार, तरुण एव वृद्ध व्यक्तियो को समान रूप से भारी बोझ उठा सकना चाहिए किन्तु तरुण तो उसे उठा सकता है, वृद्ध नही। इसी से सिद्ध है कि शरीर और आत्मा अभिन्न हैं।

केशी : हे राजन्, बालक एव तरुण अथवा वृद्ध अथवा तरुण व्यक्ति की भौतिक कार्य-क्षमता का मुख्य कारण

शरीर रूपी उपकरण है। उपकरण के शिथिल होने से बालक तरुण जैसा और वृद्ध भी तरुण जैसा कार्य नही कर मकता। इसमे आत्मा का उससे क्या सम्बन्ध ? तरुण व्यक्ति को भी यदि जीर्ण-शीर्ण धनुप-प्रत्यचा-वाण दे दिया जाय, तो वह तरुण भी पाँच वाण एक साथ नही छोड सकता। अत हे प्रदेशी, तुम्हारा तर्क सदोष है। शरीर और आत्मा निश्चय ही भिन्न है।

राजा प्रदेशी — मृत शरीर एव जीवित शरीर के वजन मे कोई अन्तर नही पाया गया। यदि शरीर एव आत्मा भिन्न-भिन्न होते, तो आत्मा का वजन जुड जाने से जीवित व्यक्ति को मृत व्यक्ति से अधिक वजनदार होना चाहिए किन्तु ऐसा नही देखा जाता। अत इस प्रयोग के निष्कर्ष से हे कुमार, ऐसा विदित होता है कि शरीर तथा आत्मा अभिन्न है।

केशी — हे राजन्, जिस प्रकार चमडे की मशक मे हवा भर-कर तौलने तथा उस हवा को निकालकर तौलने से उसके वजन मे कोई अन्तर नही होता, उसी प्रकार मृत अथवा जीवित व्यक्ति के शरीर के वजन मे भी अन्तर कैसे होगा ? अत निश्चय ही शरीर और आत्मा भिन्न हैं।

राजा प्रदेशी — हे कुमार श्रमण, व्यक्ति के क्रमश अग-अग काट डालने पर भी कही भी उसमे आत्मा-जीव दिखाई नही देता। इसी से सिद्ध है कि शरीर और आत्मा अभिन्न हैं।

केशी — प्राणियो मे जीव-आत्मा उसी प्रकार अदृश्य रूप मे छिपा रहता है जिस प्रकार काष्ठ मे अग्नि। काष्ठ को टुकडो टुकडो मे काट डालने पर भी क्या उसमे कही अग्नि दिखलाई पडती है ? उसी प्रकार प्राणियो

के अग-प्रत्यगो के छिन्न-भिन्न कर डालने पर भी आत्मा दिखलाई नही पडती। अत शरीर तथा आत्मा अभिन्न ही हैं।

राजा प्रदेशी क्या आत्मा को हथेली पर रखे गए आँवले की तरह दिखाया जा सकता है ?

केशी आत्मा-जीव को तो केवलज्ञानी सर्वज्ञ ही देख सकते हैं। छद्मस्थ या सामान्य चर्मचक्षु उसे नही देख सकते।

राजा प्रदेशी हे श्रमणकुमार, आत्मा की आकृति क्या है ?

केशी हे राजन्, आत्मा तो निराकार है। अगुरुलघु-गुण के कारण वह शरीर के प्रमाण के अनुसार चीटी या हाथी के शरीर-प्रमाण बन जाती है।

जीव-द्रव्य की सफल खोज के लिए आधुनिक-वैज्ञानिको को जैन-दर्शन का अध्ययन आवश्यक

राजा प्रदेशी एव कुमारश्रमण केशी का उक्त सवाद बडा ही महत्त्वपूर्ण एव ऐतिहासिक है। भले ही उस युग मे आज जैसी खर्चीली विस्तृत प्रयोग-शालाएँ न रही हो, फिर भी प्रयोग की चातुर्य-पूर्ण प्रक्रिया अवश्य थी। आवश्यकता इस बात की है कि प्राकृत-जैन-साहित्य के इन वैज्ञानिक प्राचीन अनुसन्धानो तथा शास्त्रार्थो से युक्त अशो का विदेशी-भाषाओ मे अनुवाद कर ससार के वैज्ञानिको को भेजा जाय, जिससे अनुप्राणित होकर वे उस सामग्री का भी उपयोग कर सकें।

कुछ जैन-वैज्ञानिको के सराहनीय कार्य

यह प्रसन्नता का विषय है कि 4-5 दशको मे कुछ जैन-वैज्ञानिको का ध्यान जैनाचार्यों द्वारा प्रतिपादित उक्त द्रव्य-व्यवस्था की ओर गया है और उन्होने आधुनिक-विज्ञान के साथ-साथ उसके तुलनात्मक अध्ययन करने के प्रयत्न किए हैं। ऐसे वैज्ञानिको मे सर्वश्री प्रो० डॉ० दौलतसिंह कोठारी, मुनिश्री नगराज जी, डॉ० नन्दलाल जैन, डॉ० दुलीचन्द्र जैन एव

श्री झवेरी आदि प्रमुख हैं। उन्होंने समय-समय पर तुलनात्मक निबन्ध आदि लिखकर विद्वानो-वैज्ञानिको को इस दिशा मे विचार करने के लिए पर्याप्त प्रेरणाएँ प्रदान की है। उन्होने जीव-आत्मा की खोज के प्रसग मे बतलाया है कि आधुनिक विज्ञान भले ही आत्म-तत्त्व के साक्षात्कार मे सफल न हो सका हो, किन्तु उनकी वर्तमान खोजो से यह अवश्य ही ज्ञात हुआ है कि जब कोई प्राणी जन्म लेता है, तो उसके साथ एक विद्युत्-चक्र (Electric-charge) रहता है, जो मृत्यु के समय लुप्त हो जाता है।

इस विषय मे डॉ० नन्दलाल का कथन है कि Electric-charge तो Conservation of energy के सिद्धान्त की दृष्टि से नाशवान नही है। तब फिर वह charge जाता कहाँ है[1] ?" इस समस्या के समाधान के लिए भी प्रयोगशालाओ मे पुन सयन्त्रो का निर्माण किया जा रहा है। हो सकता है कि इन सयन्त्रो से उक्त समस्या का कुछ समाधान निकल सके। किन्तु विश्वास यही किया जाता है कि ये नवीन यन्त्र भी जिस शक्ति का पता लगावेंगे, वह आत्मा नही होगी। क्योकि वह तो निश्चित रूप से अमूर्त्तिक, अरूपी है। हाँ, उस शक्ति की तुलना तैजस-शरीर (Electric Body) से अवश्य की जा सकती है, जो कि आत्मा से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है। फिर भी आत्मा की खोज के प्रयास मे इस तथ्य की खोज भी अपना महत्त्व रखती है।

जैन-दर्शन-विज्ञान के क्षेत्र मे उक्त तैजस शरीर भी कोई नवीन खोज नही है। क्योकि जैनाचार्यो ने पाँच प्रकार के शरीरो के वर्णन मे स्वय उसे चौथा स्थान दिया है और सहस्राब्दियो पूर्व ही उसका विस्तृत विश्लेपण कर दिया है।[2]

Sir O'Loz जैसे कुछ वैज्ञानिको की यह धारणा है कि भले ही आत्मा का साक्षात्कार करने मे विज्ञान असफल रहा हो, फिर भी आत्मा का अस्तित्व होना अवश्य चाहिए। 'Protoplasm is nothing but a viscous fluid which contains every living cell' के सिद्धान्त

---

1 महावीर स्मृतिग्रन्थ, पृ० 120

2 तत्त्वार्थराजवार्त्तिक 2/36

तथा सर जगदीशचन्द्र बोस के वनस्पति-सम्बन्धी आविष्कार ने आत्मा की सकोच-विस्तार वाली स्थिति को सिद्ध कर दिया है[1]। आत्मा के सकोच-विस्तार की स्थिति तो पूर्णतया जैन-दर्शन सम्मत है ही[2]।

अजीव-द्रव्य (Non-soul Substance)

दूसरे, अजीव द्रव्य को पाँच भागो मे विभक्त किया गया है—(1) पुद्गल, (2) धर्म, (3) अधर्म, (4) आकाश एव (5) काल। इनमे से पुद्गल-द्रव्य मूर्त्तिक है तथा अन्य द्रव्य अमूर्तिक। जीवादि छहो द्रव्यो मे से कालद्रव्य को छोडकर बाकी के 5 द्रव्य अस्तिकाय कहलाते हैं क्योंकि उनमे सत्ता एव विस्तार (Existence and Extension) दोनो गुण पाए जाते हैं। कालद्रव्य मे विस्तार की स्थिति नही होने से वह अनस्तिकाय माना गया है। कुन्दकुन्द एव परवर्ती आचार्यों ने इन विपयो पर सूक्ष्म-विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

पुद्गल (Matter and energy) और आधुनिक विज्ञान

यहाँ सक्षेप मे उक्त द्रव्यो पर क्रमश विचार किया जा रहा है। पुद्गल की परिभाषा के प्रसग मे आचार्य कुन्दकुन्द ने लिखा है कि—

उवभोज्जमिंदिएहिं य इंदियकाया मणो य कम्माणि।
ज हवदि मुत्तमण्ण त सव्वं पोग्गल जाणे॥ पचास्ति० 82

अर्थात् इन्द्रियो द्वारा उपभोग्य विषय (जैसे—स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और शब्द), पाँच स्पर्शनादि इन्द्रियाँ, पाँच प्रकार के शरीर (जैसे—औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस एव कार्माण), मन, कर्म (द्रव्य कर्म, नोकर्म) तथा अन्य जो कुछ भी मूर्त्त (अर्थात्—अनेक प्रकार की पर्यायें उत्पन्न होने के कारणभूत) अनन्त अनन्ताणुक वर्गणाएँ, अनन्त-असख्याताणुक वर्गणाएँ और द्वि-अणुक स्कन्ध तक की अनन्त सख्याताणुक वर्गणाएँ

---

1 महावीर स्मृति ग्रन्थ, पृ० 121

2 तत्त्वार्थराजवार्त्तिक 5/16

तथा परमाणु, इनके अतिरिक्त भी जो कुछ भी मूर्त हो, वह सब पुद्गल के भेद के रूप मे जानना चाहिए।

जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध एव वर्ण की अपेक्षा से तथा स्कन्ध पर्याय की अपेक्षा से पूरण एव गलन क्रिया हो, उसे भी पुद्गल (Matter and Energy) माना गया है।[1]

इन पुद्गलो को 4 भेदो मे बाँटा गया है[2]—

1 स्कन्ध—(अनन्तानन्त परमाणुओं से निर्मित होने पर भी जो एक हो)

2 स्कन्ध देश— (उपर्युक्त का आधा)

3 स्कन्ध प्रदेश—(उपर्युक्त का भी आधा)

4, परमाणु—(स्कन्ध का अविभागी अर्थात् अन्तिम एक प्रदेश वाला पुद्गलांश) अथवा—जो आदि, मध्य एवं अन्त रहित है, जो केवल एक प्रदेशी है (जिसके दो आदि प्रदेश नही हैं), और जिसे इन्द्रियो द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता, वह विभाग-विहीन द्रव्य परमाणु है।

पुद्गल परमाणु की शक्ति

आधुनिक वैज्ञानिको ने जिस (Matter and energy) का गहन अध्ययन कर समस्त विश्व को आश्चर्यचकित कर दिया है, वह वस्तुतः पुद्गल ही है। जिस पुद्गल को पूरण-गलन क्रिया वाला बताया गया है, आधुनिक विज्ञान मे उसे ही (Fusion and Fission) तथा (Disintigration) वाला सिद्ध किया गया है। Atom-bomb (परमाणु बम) को Fisson-bomb इसीलिए कहा गया, क्योंकि जब Atom (परमाणु) के कण-कण बिखर जाते हैं (पूर्वोक्त गलन क्रिया) तभी उनमे शक्ति उत्पन्न होती है। इसी प्रकार Hydrosion-bomb को Fusoin-bomb इसी

---

1. पंचास्तिकाय, गाथा-76 (संस्कृत टीका)
2. पचास्तिकाय, गाथा-74

कारण कहा गया है क्योंकि उसमे Atoms (परमाणु) जब परस्पर मे जुडते हैं (पूर्वोक्त पूरण-क्रिया), तब उसमे शक्ति उत्पन्न होती है ।[1]

आज के विशिष्ट पदार्थों मे Uranium and Redium का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वैज्ञानिक परीक्षणो से यह सिद्ध हो चुका है कि पूर्वोक्त गलन-क्रिया इन दोनो पदार्थों मे स्वाभाविक रूप से स्वत ही होती रहती है और उससे नवीन पदार्थों का जन्म होता रहता है। वैज्ञानिको ने बतलाया है कि Uranium के एक कण मे Alpha, Beta and Gamma किरणें अप्रतिहृत गति से निरन्तर निकलती रहती हैं और लगभग दो अरब वर्षों मे उसका अर्धांश Redium मे बदल जाता है ।[2]

गलन की प्रतिक्रिया Redium मे भी स्वाभाविक रूप से दिन-रात होती रहती है और उसके एक कण का अर्धांश लगभग छह हजार वर्षों मे सीसे (Lead) मे बदल जाता है ।[3]

स्निग्ध (Positive) और रूक्ष (Negative) का बन्ध

आचार्य कुन्दकुन्द ने पुद्गल की परिभाषा मे बताया है कि स्निग्ध एव रूक्ष गुणो के कारण परमाणु एक साथ बँधा रहता है ।[4] इसका समर्थन आचार्य उमास्वाति ने भी 'स्निग्धरूक्षत्वाद्-बन्ध' नामक सूत्र के माध्यम से किया है ।[5] जैनाचार्यों का यह वैज्ञानिक सिद्धान्त भी आश्चर्यजनक है और आधुनिक वैज्ञानिक खोजो के समकक्ष है। पूज्यपाद स्वामी (5वी सदी ई०) ने लिखा है कि स्निग्ध एव रूक्ष गुण के निमित्त से विद्युत् की उत्पत्ति होती है ।[6]

आधुनिक विज्ञान की दृष्टि मे उक्त स्निग्ध 'Positive' के अर्थ मे तथा रूक्ष 'Negative' के अर्थ मे लिया गया है। सामान्य भाषा मे इसे

---

1 तीर्थंकर महावीर स्मृतिग्रन्थ, पृ०-275
2-3 वही, पृ० 276
4 पचास्तिकाय, गाथा-81 (सस्कृत टीका)
5. तत्त्वार्थराजवार्तिक 5/33
6 सर्वार्थसिद्धि 5/33

गरम एव ठण्डा भी कहा जाता है। स्निग्ध एव रूक्ष का अर्थ चिकना एव रूखा अथवा खुरदरा नही होता। वस्तुतः वे वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द ही हैं और उन्हें Positive and Negative के अर्थ मे ही लेना चाहिए। जैनाचार्यों के इस विद्युत् सम्बन्धी सिद्धान्त से अनेक आधुनिक वैज्ञानिक प्रभावित हुए हैं। स्निग्ध एव रूक्ष के पौद्गलिक बन्ध को अत्यन्त वैज्ञानिक परिभाषिक शब्दो की सज्ञा देते हुए डॉ० B H Seal ने कैम्ब्रिज से प्रकाशित अपने शोध-प्रबन्ध 'Positive Sciences of Ancient Hindus' मे लिखा है—"जैनाचार्यों को यह ज्ञात था कि भिन्न-भिन्न वस्तुओ के परस्पर मे सघर्षण से Positive and Negative विद्युत् उत्पन्न की जा सकती है।"[1]

कुन्दकुन्द का षट्कोणी पुद्गल-स्कन्ध और आधुनिक विज्ञान का षट्कोणी 'क्वार्क मॉडल'

आधुनिक वैज्ञानिको ने परमाणु के विषय मे कुछ नवीन प्रयोग भी प्रारम्भ किए हैं और उसके सम्मानित निष्कर्षों को उन्होंने 'क्वार्क मॉडल' की सज्ञा दी है। वायुमण्डल की ऊँचाइयो एव समुद्र की गहराइयो मे इसकी गहन खोज की जा रही है। किन्तु अभी तक क्वार्क की खोज हो नही सकी है। इस नवीन खोज की आवश्यकता इसीलिए पड गई क्योंकि कुछ वैज्ञानिको के विचार से Proton, Neutron and Electron ये अणु के मूलभूत तत्त्व नही हैं। उनके विचार से ये तीनो किसी ऐसे पदार्थ के सयोग से बने हैं, जिसे उन्होने 'क्वार्क' का नाम दिया है। किन्तु यह सुखद आश्चर्य का विषय है कि ये परिश्रमी वैज्ञानिक जब भी 'क्वार्क' की खोज कर चुकेंगे, तब वह जैनाचार्यों द्वारा पूर्व विश्लेषित पुद्गल ही होगा।[2]

यह आश्चर्य है कि जो 'क्वार्क' विज्ञान-जगत मे अभी विवादास्पद एव खोज का विषय ही बना हुआ है, जैनाचार्यो ने उसका विश्लेषण सह-स्राब्दियो पूर्व ही कर दिया था। वैज्ञानिको के अनुमान से वह क्वार्क

1 तीर्थंकर महावीर स्मृतिग्रन्थ, पृ० 276

2 वही, पृ० 277

'षट्कोणी' (छह कोण वाला) होना चाहिए। कुन्दकुन्द तथा अनेक परवर्ती आचार्यों ने भी उसे पट्कोणी (छह कोण वाला) मानते हुए उसका विस्तृत विवेचन किया है। आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है—

> वादरसुहुमगदाण खधाण पोग्गलो त्ति ववहारो।
> ते होंति छप्पयारा तेलोक्कं जेहिं णिप्पण्णं॥ पचास्ति० 76॥

अर्थात् व्यवहार मे बादर और सूक्ष्म रूप से परिणत स्कन्ध ही पुद्गल है। वे छह प्रकार के होते है। तीनो लोक उन्ही से निष्पन्न हैं। 'नियमसार' (गाथा स० 21-23) मे कुन्दकुन्द ने पूर्ण वर्गीकरण करते हुए उनके उदाहरण भी प्रस्तुत किए हैं, जो सक्षेप मे इस प्रकार है—

1 स्थूल-स्थूल—जैसे पृथ्वी, पर्वत, लकडी, पत्थर आदि जो टूटने कटने पर पुन जुड नही सकते। (Solids such as earth, stone etc)

2 स्थूल— जैसे घी, दूध, तेल, पानी आदि तरल पदार्थ, जो बिखरने के बाद पुन स्वत जुड सकते है। (Liquids like butter, water or oil etc)

3 स्थूल-सूक्ष्म—जैसे छाया, धूप, अन्धकार, चाँदनी आदि (स्कन्ध), जो कि स्थूल ज्ञात होने पर भी जिनका छेदन-भेदन करना या हाथो से पकड सकना सभव नही। (Energy which manifests itself in forms of heat, light, electricity and magnetism.)

4 सूक्ष्म-स्थूल —जैसे स्पर्श, रस, गन्ध, शब्द, वायु आदि जो कि सूक्ष्म होने पर भी स्थूल जैसे प्रतीत होते हैं। (Gases like air and others)

5 सूक्ष्म— जैसे कर्म-वर्गणा आदि (स्कन्ध), जो सूक्ष्म हैं, तथा जो इद्रियो द्वारा अगोचर हैं। (Fine matter which is responsible for thought-activities and is beyond sense-perception)

6 सूक्ष्म-सूक्ष्म —जैसे कर्मवर्गणातीत द्वि-अणुक-स्कन्ध तक के स्कन्ध, जो

कि सूक्ष्मातिसूक्ष्म हैं, इस श्रेणी के पुद्गल कहलाते हैं। (Extrafine matter such as the streams of single elementary particles, electrons, protons and positrons or the particles like neutrons which are composed of two elementary particles each, a proton and an electorn in close union)

वर्तमान भौतिकशास्त्रियो के अनुसार विश्व मे व्याप्त सभी परमाणु चाहे वे किसी भी पदार्थ से सम्बन्धित हो, Proton (स्निग्धकण) तथा Neutron (उदासीन कण) भिन्न-भिन्न सख्याओ मे इन परमाणुओ के बन्ध से ही बने हैं। जैनाचार्यों ने भी यही तथ्य प्रस्तुत किया है—

णिद्धस्स णिद्धेण दुराहिएण लुक्खस्स लुक्खेण दुराहिएण।
णिद्धस्स लुक्खेण हवेज्ज बंधो जहण्णवज्जे विसमे समे वा॥

(गोम्मट० 614)

अर्थात् स्निग्ध परमाणु का दूसरे दो गुण अधिक स्निग्ध परमाणु के साथ बन्ध होता है। एक रूक्ष परमाणु का दूसरे दो गुण अधिक रूक्ष परमाणु के साथ बन्ध होता है। एक स्निग्ध परमाणु का दूसरे दो गुण अधिक रूक्ष परमाणु के साथ भी बन्ध होता है। सम एव विमम दोनो का बन्ध होता है। किन्तु जघन्य गुण वाले का बन्ध नहीं होता।

पुद्गल-द्रव्य का स्थूल-सूक्ष्मरूप एव प्रोफे आइस्टाइन

जैनाचार्यों ने प्राचीन काल से ही उष्णता (Heat), प्रकाश (Light) एव विद्युत् (Electricity) जिस शक्ति के रूप माने हैं वे वस्तुतः पुद्गल द्रव्य के 'स्थूल-सूक्ष्म' रूप ही हैं। यही वात इस सदी के प्रारम्भिक दशक मे अल्वर्ट आइस्टीन ने सिद्ध की थी। उनके प्रयोगो के निष्कर्षानुसार 3000 टन पत्थर के कोयले को प्रज्वलित करने से जितनी ताप (Heat) उत्पन्न हो उसे इकट्ठा कर यदि कांटे पर तौलना सम्भव हो तो उसकी तौल

(weight) मात्र एक ग्राम होगी। अर्थात् देखने मे विशाल किंतु वज़न अत्यत लघु।[1]

धर्मद्रव्य (Medium of Motion)

कुन्दकुन्द आदि अनेक जैनाचार्यों द्वारा प्रयुक्त 'धर्मद्रव्य' एक पारिभाषिक वैज्ञानिक शब्द है। वह निश्चय ही किसी सम्प्रदाय, क्रियाकाण्ड या दर्शन-विशेष से सम्वन्धित शब्द नही है। यहाँ पर उसका अर्थ है—"जो जीवो एव पुद्गलो की गमनक्रिया मे सहायक हो, वह धर्मद्रव्य है।" कुन्दकुन्द ने स्पष्ट कहा है—

> उदयं जह मच्छाणं गमणाणुग्गहकरं हवदि लोए।
> तह जीवपोग्गलाणं धम्मं दव्वं वियाणाहि ॥ पचास्ति० 85 ॥

अर्थात् जिस प्रकार लोक मे पानी मछलियो के गमन मे अनुग्रह करता है, उसी प्रकार धर्मद्रव्य जीवो एव पुद्गलो के गमन करने मे अनुग्रह करता है।

धर्म-द्रव्य की आवश्यकता

आचार्य कुन्दकुन्द ने धर्मद्रव्य को अमूर्त, अदृश्य, लोकव्यापी, अखण्ड, विशाल, असख्यात प्रदेशी एव उदासीन माना है।[2] तात्पर्य यह कि विश्व मे यदि धर्मद्रव्य न होता तो वस्तु की समस्त क्रियाएँ ठप्प पडी रह जाती और सर्वत्र स्थिरिता या जडता का साम्राज्य वना रहता। यहाँ तक कि सूर्य एव चन्द्र की किरणें भी पृथ्वी पर न आ पाती, मेघजल भी पृथ्वीमण्डल पर न पहुँच पाता, नदियो एव वायु का प्रवाह भी जहाँ का तहाँ रुका पडा रहता। विश्व के विविध जीवों एव पुद्गलो मे जो भी जहाँ भी गतिशीलता दिखाई देती है, वह सब धर्मद्रव्य के कारण ही। रेलें, वसें, हवाई जहाज, समुद्री

---

1. तीर्थं, महावीर स्मृतिग्रन्थ, पृ० 277
2. पचास्तिकाय, गाथा-84

जहाज आदि एक भी कदम आगे न बढ पाते, यदि धर्मद्रव्य उनके गमन मे सहायक न हो। यदि धर्मद्रव्य न हो, तो आकाश, पाताल एव मर्त्यलोक मे जीवो एव पुद्गलो का सर्वथा गमनागमन ही रुक जाए।

धर्म-द्रव्य और आधुनिक विज्ञान

उक्त धर्मद्रव्य के गुणो का समर्थन आधुनिक भौतिक-विज्ञान ने भी किया है। इन वैज्ञानिको का कथन है कि प्रकाश-किरणें शून्य मे नही, बल्कि वे आकाश मे व्याप्त हैं तथा Ether of space के जरिए पृथ्वी पर पहुँचती हैं। Ether के विषय से वैज्ञानिको की मान्यता है कि वह (Ether) कोई पदार्थ या दृश्य वस्तु नही है। वह तो सर्वत्र व्याप्त है तथा सभी की गमन-क्रिया मे सहायक है।[1]

उक्त Ether के प्राय सभी गुण धर्मद्रव्य मे वर्तमान हैं। धर्मद्रव्य के समान ही वह अरूपी (Formless) एव वस्तुओ से भिन्न है। धर्मद्रव्य के समान वह भी निष्क्रिय, अनन्त एव आकाशव्यापी और अपौद्गलिक है तथा धर्मद्रव्य के समान ही वह शक्तिशाली है। जैसा कि बतलाया गया है—Ether is not a kind of matter (पुदग्ल रूपी) Being non-material, its properties are quite unique[2]

अधर्म-द्रव्य (Medium of Rest)

विश्व-व्यवस्था मे जो महत्त्व धर्मद्रव्य का है, वही महत्त्व अधर्म द्रव्य का भी है। अधर्म द्रव्य का तात्पर्य यहाँ अनाचार, दुष्टाचार या साम्प्रदायिक सकीर्णता से नहीं है, बल्कि वह एक पारिभाषिक वैज्ञानिक शब्द है, जो जीवो एव पुद्गलो को स्थिर करने मे सहायक होता है। जैनाचार्यों के अनुसार यह अधर्म द्रव्य भी अमूर्त, अदृश्य तथा लोकव्यापी है। यह अधर्म-द्रव्य आइस्टाइन के Field of Gravitation के सिद्धान्त से समर्थित है।[3]

---

1 महावीर स्मृति ग्रन्थ, पृ० 278

2. महावीर स्मृति ग्रथ, पृ०123

3. पचास्तिकाय, गाथा-91

लोक-व्यवस्था मे अधर्म-द्रव्य का महत्त्व

अधर्म द्रव्य लोक-व्यवस्था के लिए अत्यावश्यक तत्त्व है। यदि वह न होता तो विश्व का प्रत्येक पदार्थ निरन्तर चलायमान रहता और इस प्रकार लोक मे स्थायित्व नही रह पाता। लोक मे यदि केवल जीव, पदार्थ एव आकाश मात्र ही होते तो वे सभी (अधर्म द्रव्य के अभाव के कारण) अनन्त आकाश मे फैल जाते और इस प्रकार समस्त लोक-व्यवस्था ही गड-बड हो जाती।

तात्पर्य यह कि धर्म द्रव्य (Medium of motion) तथा अधर्म द्रव्य (Medium of rest) ये दोनो ही द्रव्य (Substances) लोक-व्यवस्था के लिए अनिवार्य है। यद्यपि दोनो ही द्रव्य परस्पर विरोधी है, फिर भी उनमे परस्पर मे किसी प्रकार की टकराहट नही है, क्योकि वे किसी को भी गमन करने अथवा ठहरने के लिए प्रेरणा नही देते या जबरदस्ती नही करते बल्कि जो स्वत ही गमन करते हैं, अथवा जो स्वत ही स्थिर होते हैं, उनके लिए वे अनिवार्य रूप से सहायक अवश्य होते हैं। कुन्दकुन्द कहते हैं—

ण य गच्छदि धम्मत्थी गमणं ण करेदि अण्णदवियस्स।
हवदि गदिस्स य पसरो जीवाणं पोग्गलाणं च ॥ पचास्ति०-88॥

अर्थात् धर्मास्तिकाय गमन नही करता और अन्य द्रव्य को भी वह बलात् गमन नही कराता। वह तो जीवो तथा पुदग्लो की गति का उदासीन प्रसारक है।

ठीक यही स्थिति अधर्मास्तिकाय की भी है।

आकाश-द्रव्य (Space-substance)

आकाश-द्रव्य भी पारिभाषिक शब्द है। बतलाया गया है कि जो जीव पुदग्ल, धर्म, अधर्म एव काल को अवकाश अर्थात् स्थान-दान दे वही आकाश है।

जैनाचार्यों के कथनानुसार आकाश नित्य, व्यापक एवं अनन्त है।[1] वह

---

1 पचास्तिकाय, गाथा 91-94

दो भागो मे विभक्त है—(1)लोकाकाश, जिसमे जीव, पुदग्ल, धर्म, अधर्म एव काल द्रव्य पाए जावें। तथा (2) अलोकाकाश, अर्थात् जिसमे केवल आकाश ही आकाश हो।

लोकाकाश के बाहर (धर्म-अधर्म-द्रव्य के अभाव के कारण) जीवा-जीवादि का गमनागमन सम्भव नही।[1]

आकाश-द्रव्य और आधुनिक विज्ञान

जैनाचार्यों द्वारा प्रतिपादित आकाश मे विद्यमान समस्त गुणो को स्वीकार करते हुए आधुनिक वैज्ञानिक भी आकाश को स्वतन्त्र द्रव्य नही मानते। इस विषय मे भी H Ward का यह कथन ध्यातव्य है—

"The total amount of matter which exists, is limited and that the total extent of the Universe (लोक) is finite They do not concieve that there is limit beyond which no space exists"[2]

आइस्टाइन की खोज के अनुसार पदार्थ की सत्ता आकाश के सीमा-परिमाण मे कारण है। बिना वस्तु एव समय के आकाश की कल्पना नही की जा सकती क्योकि पदार्थ ही इसका आधार है।[3] किन्तु जैन-दर्शन का सिद्धान्त आइस्टाइन की खोज से भी मेल नही खाता क्योकि उसके अनुसार तो विश्व लोकाकाश एव अलोकाकाश मे सर्वत्र व्याप्त है और वह समस्त विश्व का एक भाग (लोकाकाश) सीमित मानता है और उसके ऊपर है अनन्त आकाश।[4]

इसके विपरीत आइस्टाइन ने समस्त विश्व को सीमित माना है तथा उसके ऊपर कुछ भी नही अर्थात् वे आकाश को शून्य नही मानते और इसी

---

1 पचास्तिकाय, गाथा-94

2 महावीर स्मृति ग्रन्थ, पृ० 121

3 वही, पृ० 122

4 पचास्तिकाय, गाथा-91

कारण अलोकाकाश को भी नही मानते और अलोकाकाश को माने विना लोक-व्यवस्था वन ही नही सकेगी ।

काल-द्रव्य (Time-substance)

विश्व-व्यवस्था के लिए जैनाचार्यों ने कालद्रव्य को भी अन्य द्रव्यो की भाँति ही विशेप महत्त्व प्रदान किया है । क्योकि वह परिवर्तन का सूचक है और परिवर्तन ही विकास का प्रधान कारण माना गया है ।

कुन्दकुन्द प्रभृति आचार्यों ने सस्कृत एव प्राकृत मे काल-द्रव्य के विपय मे गम्भीर अध्ययन एव विश्लेपण प्रस्तुत किए हैं । उनके अनुसार वह पदार्थों के परिवर्तन मे कुम्भकार-चक्रवत् सहायक कारण है । उसमे उत्पाद, व्यय एव ध्रुवत्व होने के कारण उसे जीवादि के समान ही 'द्रव्य' माना गया है ।

काल का वर्गीकरण दो प्रकार से किया गया है —

(1) निश्चयकाल (लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश मे व्याप्त असख्य अविभागी कालाणु), तथा

(2) व्यवहारकाल अर्थात् वह 'समय' जो एक परमाणु या कालाणु अपने पास से दूसरे (Consecutive) परमाणु के पास तक पहुँचने मे लगता है ।

उक्त परिभाषाओ के अनुसार व्यवहार-काल सादि एव सान्त तथा निश्चयकाल अनन्त है, जो ध्रौवत्व (वर्तना, continuity) का सूचक है ।

कालाणुओ मे परस्पर मे मिलने की शक्ति नही होने से वे पुद्गल-स्कन्ध के समान बँध नही सकते । वे अदृश्य, अरूपी एव निष्क्रिय होते है ।

काल-द्रव्य मे अस्तित्व तो माना गया है किन्तु अन्य द्रव्यो के समान उसमे कायत्व (अर्थात् विस्तार एव मिलन) की शक्ति नही है । अत उसे अनस्तिकाय कहा गया है ।[1]

परिमाण की दृष्टि से काल का सबसे वडा परिमाण महाकल्प है जो उत्सर्पिणी एव अवसर्पिणी के काल के जोड के बरावर है और जो लगातार

---

1 पचास्तिकाय, गाथा-22

77 अको मे लिखा जा सकता है । काल का सबसे छोटा परिमाण 'समय' है।

काल-द्रव्य के वर्तना (वर्तना कराना), परिणाम (अपनी मर्यादा के भीतर प्रति समय परिवर्तित पर्याय), क्रिया (हलन-चलन रूप व्यापार से युक्त द्रव्य की अवस्था), परत्व (आयु की अपेक्षा बड़ा) और अपरत्व (आयु की अपेक्षा छोटा) कार्य अथवा उपकार माने गए हैं ।[1]

भारतीय दर्शनो मे से जैनदर्शन ने काल-द्रव्य के विषय मे जितना गहन अध्ययन एव विश्लेषण किया है वह अन्य दर्शनो में नही । न्याय-वैशेषिक दर्शनो मे यद्यपि उसका वर्णन किया गया है, किन्तु वह जैनदर्शन के उक्त व्यवहार-काल तक ही सीमित रह गया । निश्चय-काल तक उनकी पहुँच नही हो सकी ।

कालद्रव्य और आधुनिक विज्ञान

आधुनिक विज्ञान ने भी काल-द्रव्य के विषय मे खोजबीन की है और उनके निष्कर्ष भी लगभग वही हैं, जिनका प्रतिपादन जैनाचार्य सहस्राब्दियो पूर्व कर चुके हैं । सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक हैनशा का यह कथन विचारणीय है[2] —

"Space (आकाश-द्रव्य), Matter (पुद्‌गल-द्रव्य), Time (काल-द्रव्य) and Medium of motion (धर्म-द्रव्य) are all separate in our minds We can not imagine that one of them could depend on another or be converted into another." सुप्रसिद्ध फ्रासीसी दार्शनिक वर्गशा ने तो स्पष्ट घोषित किया है कि "विश्व के विकास मे 'काल' का विशेष महत्त्व है। विना उसके परिणमन एव परिवर्तन सम्भव नही । अत काल भी द्रव्य है ।"[3]

---

1 पचास्तिकाय, गाथा-24

2 महावीर स्मृति ग्रन्थ, पृ० 126

3 वही, पृ० 126

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक Eddington ने जैनाचार्यों द्वारा कथित काल द्रव्य के पूर्वोक्त दो भेदो का भी समर्थन किया है। यथा—"Whatever may be the time defuse (व्यवहार) the Astronomer royal's time is de-fecto (निश्चय)"[1]

द्रव्यसग्रहकार ने कहा है कि लोकप्रकाश के एक-एक प्रदेश मे रत्नो की राशि के समान पृथक्-पृथक् रूप मे असख्यात कालाणु विद्यमान हैं। यथा—

लोयायासपदेसे एक्केक्के जे ठिया हु एविक्कक्का।
रयणाण रासिमिव ते कालाणू असंखदव्वाणि ॥ 22 ॥

आइस्टाइन एव एडिंग्टन जैसे वैज्ञानिको की खोजो मे उक्त कथन का पूर्ण समर्थन होता है। एडिंग्टन ने लिखा है[2]—

"You may be aware that it is revealed to us in Einstine's theory that space and time are mixed in rather or strange way both space and time vanish away into nothing if there be no matter we can not conceive of them without matter It is matter in which originate Space and Time and our Universe of perception"

इसी प्रकार काल-द्रव्य, अनस्तिकायत्व एव अनन्तता भी आधुनिक विज्ञान द्वारा समर्थित है।

इस प्रकार यहाँ आचार्य कुन्दकुन्द के मूल्याकन का प्रयत्न किया गया, किन्तु मूल्याकन की यह अन्तिम सीमा नही है क्योकि उनका व्यक्तित्व तो इतना विराट है कि उसे शब्दो मे गूँथ पाना सम्भव नही। अभी तक विद्वानो ने उनका दार्शनिक मूल्याकन तो किया, उसमे अनेक बार पुनरावृत्तियाँ होने पर भी हमारी दृष्टि मे वह अद्यावधि अपूर्ण ही है, क्योकि विश्व के यूनानी आदि प्रमुख दर्शनो के साथ कुन्दकुन्द का तुलनात्मक अध्ययन तथा उनके

1 महावीर स्मृति ग्रन्थ, पृ० 126

2 वही, पृ० 126

पारस्परिक आदान-प्रदान की दिशा मे कोई भी विचार नही किया गया, जो कि अत्यावश्यक ही नही, कुन्दकुन्द के दार्शनिक रूप के वैशिष्ट्य-प्रदर्शन के लिए अनिवार्य भी है। इसी प्रकार कुन्दकुन्द की भाषा का भाषा-वैज्ञानिक विश्लेषण, व्रजभाषा एव उसके भक्ति-प्रधान साहित्य के ऊपर प्रभाव, कुन्दकुन्द के साहित्य का सर्वांगीण सास्कृतिक, सामाजिक एव काव्यात्मक मूल्याकन भी अभी तक नही हो पाया है। इन पक्षो पर भी जब तक विस्तृत प्रामाणिक अध्ययन नही हो जाता, तब तक हम कुन्दकुन्द के बहुआयामी महान् व्यक्तित्व से अपरिचित ही रहेगे।

वस्तुत आचार्य कुन्दकुन्द केवल श्रमण-परम्परा के ही महान् सवाहक आचार्य नही, अपितु भारतीय सस्कृति, समाज एव इतिहास के विविध-पक्षो को प्रकाशित करने वाले एक महर्षि, योगी एव आचार्य-लेखक भी हैं। यही नही, लोक-व्यवस्था तथा द्रव्य-व्यवस्था के क्षेत्र मे उनका जो गहन-चितन एव विश्लेषण है, वह भी बेजोड है। भौतिक-जगत् के अनेक प्रच्छन्न रहस्यो का उन्होने जिस प्रकार उद्घाटन एव प्रकाशन किया है, उससे भारतीय प्राच्य-विद्या, विशेष रूप से जैन-विद्या गौरव के अग्र-शिखर पर प्रतिष्ठित हुई है। ऐसे महिमा-मण्डित आचार्य के द्विसहस्राब्दी-समारोह के प्रसग मे यदि उनके सर्वांगीण पक्षो को प्रकाशित किया जा सके, तो वह इस सदी की एक बहुत बडी उपलब्धि मानी जायेगी।

परिशिष्ट-1

कुन्दकुन्द-सौरभ

लोक-भाषा (प्राकृत) के प्रयोग की अनिवार्यता—

1 जहण वि सक्कमणज्जो अणज्जभास विणादुगा हेदु।
तह ववहारेण विणा परमत्थुवदेसणमसक्क॥

(समयसार, 8)

—जिस प्रकार अनार्य को अनार्य-भाषा के विना अर्थग्रहण कराना (अर्थात् आशय समझाना) शक्य नही है, उसी प्रकार व्यवहार-नय के बिना परमार्थ का उपदेश करना भी शक्य नही।

विशेष—जैनाचार्यों की विशेषता रही है कि उन्होंने जिस प्रकार लोक-जीवन से अपना सम्बन्ध रखा, उसी प्रकार लोक-भाषाओ से भी। क्योंकि वे निरन्तर यह सोचकर चलते रहे कि यदि सामान्य जनता के लिए, सामान्य-जनता की भाषा मे उसके हित की बातें न समझाई जाएँ, तो वे उसे समझ ही नही पायेंगे। कुन्दकुन्द के पूर्व भगवान महावीर भी यही आदर्श स्थापित कर चुके थे। कुन्दकुन्द ने भी यही अनुभव किया कि लोक-भाषाओ का प्रयोग अत्यावश्यक है। अत उन्होंने अपने 'समयसार' नामक ग्रन्थ की उक्त गाथा मे लोकभापा के प्रयोग पर वल दिया है। वे कहते हैं कि अनार्य-व्यक्ति को अनार्य-भाषा के विना अर्थ-ग्रहण कराना शक्य नही।

कुन्दकुन्द का तात्पर्य है कि भाषा के क्षेत्र मे भी लोकतन्त्र उसी प्रकार होना चाहिए, जिस प्रकार कि राजनीति मे।

मध्यकाल मे अराविक या पर्शियन भाषा राज्य-भापा बनी। अग्रेजो के समय मे भी अग्रेजी राज्य-भापा वनी, उसका सामान्य जन-जीवन पर क्या

प्रभाव पडा ? निश्चय ही सभी लोग यह अनुभव करते रहे कि सामान्य-जनता प्रशासन की नीतियो से अनभिज्ञ होती गई तथा मानसिक गुलामी से जकडती गई ।

सद्‌गुणो की ही पूजा (प्रतिष्ठा) होती है—

2 ण वि देहो वदिज्जइ ण वि य कुलो ण वि य जाइसजुत्तो ।
को वदमि गुणहीणो ण हु सवणो णेव सावओ होई ।।

(दर्शन पाहुड 27)

—न तो शरीर की वन्दना की जाती है, न कुल और न जाति-सयुक्त की वन्दना ही । गुणहीन की कौन वन्दना करता है ? क्योकि गुणो के विना न तो व्यक्ति सच्चा मुनि हो सकता है और न श्रावक ही ।

विशेष—उक्त गाथा मे व्यक्ति के गुणो पर विशेप जोर दिया गया है । वह केवल कुल, जाति एव समृद्धि से पूजित नही हो सकता वल्कि अपने सद्‌गुणो से ही पूजित हो सकता है । किसी कवि ने कहा भी है कि—

नयर न होई अट्टालिएहिं पायार-तुग-सिहरेहिं ।
गामो वि होइ नयर जत्थ-छइल्लो जणो वसइ ।।

(वज्जा० 270)

अर्थात् नगर की शोभा धन-दौलत, ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओ एव भोग-विलास मे डूवे नर-नारियो से नही होती, वल्कि इससे होती है कि उस नगर के नागरिक सज्जन हैं अथवा दुर्जन, चोर-डकैत हैं अथवा सास्कृतिक सुरुचियो से सम्पन्न ?

लक्ष्य-सिद्धि के लिए रत्नत्रय की अनिवार्यता—

3 णाण णरस्स सारो सारो वि णरस्स होइ सम्मत्त ।
सम्मत्ताओ चरण चरणाओ होइ णिव्वाण ।।

(दर्शन पाहुड 31)

—मनुष्य के लिए सर्व प्रथम ज्ञान ही सारतत्त्व है और ज्ञान से भी

अधिक सारतत्त्व है सम्यग्दर्शन, क्योकि सम्यग्दर्शन से ही सम्यक्चारित्र होता है और सम्यक्चारित्र से निर्वाण की सम्प्राप्ति ।

विशेष— प्रस्तुत गाथा मे कुन्दकुन्द ने लक्ष्यसिद्धि के लिए रत्नत्रय के महत्त्व पर प्रकाश डाला है। रत्नत्रय का अर्थ है—सम्यक्दर्शन अर्थात् निर्दोष श्रद्धान एव विश्वास, ज्ञान अर्थात् निर्दोष ज्ञान एव निर्दोष चारित्र ।

आचार्यों ने एक उदाहरण देते हुए वताया है कि जिस प्रकार एक रोगी को स्वस्थ होने के लिए चिकित्सक एव चिकित्सा पर विश्वास करना आवश्यक है, क्योकि उसके विना दवा का प्रभाव रोगी की बीमारी पर नही पड सकता। अत सबसे पहले सम्यक् विश्वास, फिर चिकित्सक एव चिकित्सा के विषय मे उसकी उपादेयता का ज्ञान भी आवश्यक है। तत्पश्चात् चिकित्सक के कथनानुसार दवा समय पर लेना भी आवश्यक है। इन तीनो विधियो मे से यदि किसी एक मे किसी भी प्रकार की कमी रहेगी, तो रोगी जिस प्रकार ठीक नही हो सकता उसी प्रकार श्रावक एव साधु भी रत्नत्रय के बिना लक्ष्य की प्राप्ति नही कर सकते ।

शक्ति के अनुसार ही धर्माचरण किया जाए—

4 ज सक्कइ त कीरइ ज च ण सक्केइ त च सद्दहण ।
केवलिजिणेहि भणिय सद्दहमाणस्य सम्मत ।।

(दर्शन० 22)

—जितना चारित्र धारण किया जा सके, उतना मात्र ही धारण करना चाहिए और जो धारण नही किया जा सकता, उसका श्रद्धान करना चाहिए। क्योकि केवलज्ञानी ने श्रद्धान करनेवालो के इस गुण को ही सम्यग्दर्शन वतलाया है।

विशेष—व्यक्ति को अपनी शक्ति के अनुसार ही साधना करना चाहिए। अन्यथा उसकी स्थिति वैसी ही होगी जैसे कि दुर्वल वैल पर शक्ति से अधिक वोझा लाद देने से हो सकती है। कुन्दकुन्द के सकेतानुसार व्यक्ति को अपनी शक्ति के अनुसार ही धर्माचरण करना चाहिए तथा जो उसकी

शक्ति के बाहर हो, उसके प्रति वह श्रद्धालु बना रहे। यही उपयुक्त भी है। इसमे व्यर्थ के प्रदर्शनो की आवश्यकता नही है।

सदाचरण ही श्रेष्ठ धर्म है—

5 सव्वे वि य परिहीणा रूवविरूवा वि वदिदसुवया वि।
सील जेसु सुसील सुजीविद माणुस तेसिं॥
(शीलपाहुड 18)

—जो भले हीहीन-जाति के है, रूप से विरूप अर्थात् कुरूप है और जो वृद्धावस्था से युक्त हैं—इन सबके होने पर भी यदि वे सुशील हैं तो उन्ही की मानवता जीवन्त है अर्थात् उन्ही का मनुष्य-भव सर्वश्रेष्ठ है।

तात्पर्य यह कि जो व्यक्ति लोक का हितैषी है, उसका निश्छल-व्यवहार एव सरल-हृदय होना ही पर्याप्त है। भले ही वह जाति एव कुल से हीन हो अथवा कुरूप या अपग, तो भी वह अपने जीवन मे आगे बढ सकता है और सफल तथा यशस्वी हो सकता है।

ससार का समस्त वैभव क्षणिक है—

6 वरभवण-जाण-वाहण-सयणासण-देव-मणुवरायाण।
मादु-पितु-सजण-भिच्चसवधिणो य पिदिवियाणिच्चा॥
(वारसाणु० 3)

—उत्तम भवन,यान, वाहन, शयन, आसन, देव, मनुष्य, राजा, माता, पिता, स्वजन, सेवक सम्बन्धी तथा चाचा आदि सभी अनित्य हैं।

विशेष—लोग अपने वैभव पर इठलाते हैं, सौन्दर्य पर अभिमान करते हैं, उच्चकुल मे जन्म लेने के कारण घमण्ड मे चूर रहते हैं, किन्तु मरते समय कितनी वस्तुएँ उनके साथ मे जाती हैं? यह सभी जानते हैं कि सिकन्दर ने विश्व-विजय की, अरबो-खरबो की सम्पत्ति लूटी, किन्तु कितना धन वह साथ मे ले गया? कुन्दकुन्द कहते हैं कि शरीर और आत्मा भिन्न-भिन्न हैं। आत्मा के अतिरिक्त जितने भी पदार्थ हैं, वे सब क्षणिक हैं। अत उनमे लिप्त मत बनो।

सच्चा श्रमण कौन ?—

7 समसत्तुवधवग्गो समसुहदुक्खो पससणिदसमो।
समलोट्ठु कचणो पुण जीविदमरणो समो समणो॥

(प्रवचन सार 3/41)

—जो शत्रु एव मित्र, सुख एव दु ख, प्रशसा एव निंदा तथा पत्थर एव सोना और जीवन एव मरण मे समवृत्ति वाला है, वही (यथार्थत सच्चा) श्रमण है।

सुपात्र को दान एव भावों की निर्मलता आवश्यक—

8 पत्तविणा दाण य सुपुत्तविणा वहुधण महाखेत्त।
चित्तविणा वयगुणचारित्त णिक्कारण जाणे॥

(रयण० 30)

—जिस प्रकार सुपुत्र के विना विपुल धन और वडे-वडे खेतो का होना व्यर्थ है, एव अच्छे पात्र के विना दान देना भी निरर्थक है। उसी प्रकार भावो के विना व्रत, गुण और चारित्र का पालन भी निष्फल है।

परमाणु का लक्षण—

9 अत्तादि अत्तमज्झ, अत्तंत णेव इदिए गेज्झ।
अविभागी ज दव्व, परमाणू त वियाणाहि॥

(णियम० 26)

—स्वस्वरूप ही जिसका आदि है, स्वस्वरूप ही जिसका अन्त है, जो इद्रियो के द्वारा ग्रहण नही किया जा सकता और जो अविभागी है, उस द्रव्य को परमाणु जानो।

विशेष—भौतिक जगत् के विषय मे कुन्दकुन्द ने वहुत लिखा है। वह अलग ही चर्चा का विषय हो सकता है। उसका एक छोटा-सा उदाहरण ही यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। कुन्दकुन्द कहते हैं कि परमाणु अर्थात् Atom वहुत शरारती एव नखरेवाज है, साथ ही महान शक्तिशाली भी। समस्त

लोकाकाश उससे भरा पडा है। यद्यपि वह खोखला है, उसका न आदि है न अन्त और न मध्य। वह इन्द्रियो के द्वारा भी ग्रहण नही किया जा सकता। वह अविभागी है। कुन्दकुन्द का यह विचार दो हजार वर्ष पूर्व का है। विना प्रयोगशाला के तथा लाइट, यत्र के विना ही उन्होने परमाणु को अपने दिव्य नेत्रो एव दिव्य ज्ञान की परखनली से देखा था, फिर भी वह सटीक उतरा। और अब अरवो-खरवो रुपयो की लागत की प्रयोगशाला मे वैठकर वैज्ञानिको की तीन-चार पीढियो के लगातार प्रयोग करते रहने के वाद भी देखिए कि उन्होने परमाणु के विषय मे क्या खोज की है ? उनका यह कथन पठनीय है—

"We can not see atoms either and never shall be able too even if they were a million times bigger it would still be impossible to see them even with the most powerful microscope that has been made"

अर्थात् हम लोग परमाणु को न तो देख सके हैं और न आगे भी देख सकेंगे। भले ही दस लाख परमाणु एक साथ भी मिल जावें, तो भी हम उसे शक्तिशाली दूरवीन से भी नही देख सकेंगे।

परिशिष्ट-2

कुन्दकुन्द-नवनीत

षड्द्रव्य-वर्णन

1 जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा तहेव आगास।
अत्थित्तम्हि य णियदा अणण्णमइया अणुमहता ।।

(पञ्चास्तिकाय, 4)

—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, तथा आकाश ये अस्तित्व मे नियत, अनन्यमय और अणुमहान् हैं।

अस्तिकाय का स्वरूप—

2 जेसिं अत्थि सहाओ गुणेहिं सह पज्जएहिं विविहेहिं।
ते होंति अत्थिकाया णिप्पण्ण जेहिं तेल्लोक्क ।।

(पञ्चास्तिकाय, 5)

—जिन्हे विविध गुणो और पर्यायो के साथ अपनत्व है, वे अस्तिकाय हैं, जिनसे तीनो लोक निष्पन्न हैं।

अस्तिकायो का स्वभाव—

3 अण्णोण्ण पविसता देता ओगासमण्णमण्णस्स।
मेलता वि य णिच्च सग सभाव ण विजहति ।।

(पञ्चास्तिकाय, 7)

—वे एक-दूसरे मे प्रवेश करते हैं, अन्योन्य अवकाश देते है, परस्पर मिल

जाते हैं, तथापि सदा अपने-अपने स्वभाव को नही छोडते ।

सत्ता का लक्षण—

4 सत्ता सव्वपयत्था सविस्सरूवा अणतपज्याया ।
भंगुप्पादधुवत्ता सप्पडिवक्खा हवदि एक्का ।।
(पञ्चा० 8)

—सत्ता उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक, एक, सर्वपदार्थस्थित, सविश्वरूप, अनन्तपर्यायमय और सप्रतिपक्ष है ।

द्रव्य का लक्षण—

5 दव्व सल्लक्खणिय उप्पादव्वयधुवत्तसजुत्त ।
गुणपज्जयासय वा ज त भणति सव्वण्हू ।।
(पञ्चा० 10)

—जो 'सत्' लक्षणवाला है, जो उत्पादव्ययध्रौव्यसयुक्त है अथवा जो गुणपर्यायो का आश्रय है, उसे सर्वज्ञ द्रव्य कहते हैं ।

पर्याय की दृष्टि से सत्ता—

6 उप्पत्ती व विणासो दव्वस्स य णत्थि अत्थि सब्भावो ।
विगमुप्पादधुवत्त करेंति तस्सेव पज्जाया ।।
(पञ्चा० 11)

—द्रव्य का उत्पाद या विनाश नही है, सद्भाव है । उसी की पर्यायें विनाश, उत्पाद और ध्रुवता करती हैं ।

द्रव्य एवं पर्याय की अभेदरूपता—

7 पज्जयविजुद दव्व दव्वविजुत्ता य पज्जया णत्थि ।
दोण्ह अणण्णभूदं भाव समणा परूवेति ।।
(पञ्चा० 12)

—पर्यायो रहित द्रव्य और द्रव्य रहित पर्यायें नही होती। श्रमणो ने दोनो के अनन्यभाव को प्ररूपित किया है।

द्रव्य और गुणो का सम्बन्ध—

8 दव्वेण विणा ण गुणा गुणेहिं दव्व विणा ण संभवदि।
अव्वदिरित्तो भावो दव्वगुणाण हवदि तम्हा॥
(पञ्चा० 13)

—द्रव्य के विना गुण नही होते और गुणो के विना द्रव्य नही होता। इसलिए द्रव्य और गुणो का अव्यतिरिक्तभाव है।

सत्ता का अभाव नहीं होता—

9 भावस्य णत्थि णासो णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो।
गुणपज्जएसु भावा उप्पादवए पकुव्वंति॥
(पञ्चा० 15)

—भाव का नाश नही है तथा अभाव का उत्पाद नही है। भाव ही गुणपर्यायो मे उत्पाद एव व्यय करते हैं।

द्रव्यो के गुण एव पर्यायें—

10 भावा जीवादीया जीवगुणा चेदणा य उवओगो।
सुरणरणारयतिरिया जीवस्स य पज्जया बहुगा॥
(पञ्चा० 16)

—जीवादि ही 'भाव' हैं। जीव के गुण चेतना तथा उपयोग हैं और जीव की पर्यायें देव, मनुष्य, नारक, तिर्यञ्चरूप अनेक हैं।

सत्ता का नाश नहीं होता—

11 मणुसत्तणेण णट्ठो देही देवो हवेदि इदरो वा।
उभयत्थ जीवभावो ण णस्सदि ण जायदे अण्णो॥
(पञ्चा० 17)

—मनुष्यत्व से नष्ट हुआ देही देव अथवा अन्य होता है। उन दोनो जीवभाव नष्ट नही होता और दूसरा जीवभाव भी उत्पन्न नही होता।

अस्तिकायो के भेद—

12 जीवा पुग्गलकाया आयास अत्थिकाइया सेसा।
अमया अत्थित्तमया कारणभूदा हि लोगस्स ॥
(पञ्चा० 22)

—जीव, पुद्गलकाय, आकाश और शेष दो अस्तिकाय अकृत हैं अस्तित्वमय हैं और वास्तव मे लोक के कारणभूत हैं।

कालद्रव्य का लक्षण—

13 ववगदपणवण्णरसो ववगददोगधअट्ठफासो य।
अगुरुलहुगो अमुत्तो वट्टणलक्खो य कालो त्ति ॥
(पञ्चा० 24)

—काल पाँच वर्ण और पाँच रस रहित, दो गन्ध और आठ ... रहित, अगुरुलघु, अमूर्त और वर्तना लक्षणवाला है।

व्यवहार काल—

14 समओ णिमिसो कट्ठा कला य णाली तदो दिवारत्ती।
मासोदुअयणसवच्छरो त्ति कालो परायत्तो ॥
(पञ्चा० 25)

—समय, निमेष, काष्ठा, कला, घडी, अहोरात्र, मास, ऋतु, अयन और वर्ष ऐसा जो काल (अर्थात् व्यवहारकाल) है, वह पराश्रित है।

जीव (Soul) का लक्षण—

15 जीवो त्ति हवदि चेदा उवओगविसेसिदो पहू कत्ता।
भोत्ता य देहमत्तो ण हि मुत्तो कम्मसजुत्तो ॥
(पञ्चा० 27)

—आत्मा जीव है, चेतियता (चेतनेवाला) है, उपयोगलक्षित है, प्रभु है, कर्त्ता, भोक्ता है, देह-प्रमाण है, अमूर्त है और कर्म-सयुक्त है ।

जीव स्वदेह प्रमाण होता है—

16 जह पउमरायरयण खित्त खीरे पभासयदि खीर।
तह देही देहत्थो सदेहमेत्त पभासयदि ॥
(पञ्चा० 33)

—जिस प्रकार पद्मरागमणि दूध मे डाला जाने पर दूध को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार देही (जीव) देह मे रहता हुआ वह स्वदेह-प्रमाण प्रकाशित होता है ।

जीवद्रव्य द्रव्यापेक्षा से अपनी समस्त पर्यायों मे रहता है—

17 सव्वत्थ अत्थि जीवो ण य एक्को एक्ककाय एक्कट्ठो ।
अज्झवसाणविसिट्ठो चिट्ठदि मलिणो रजमलेहिं ॥
(पञ्चा० 34)

—जीव सर्वत्र (क्रमवर्ती सर्व शरीरो मे) है और किसी एक शरीर मे (क्षीरनीरवत्) एक रूप से रहता है तथापि उसके साथ एक नही है । अध्यवसायविशिष्ट वर्तता हुआ रजमल (कर्ममल) द्वारा मलिन होने के कारण वह भ्रमण करता रहता है ।

पुद्गल-द्रव्य के भेद—

18 खधा य खधदेसा खधपदेसा य होंति परमाणू ।
इदि ते चदुव्वियप्पा पुग्गलकाया मुणेयव्वा ॥
(पञ्चा० 74)

—स्कन्ध, एकस्कन्ध, स्कन्धप्रदेश और परमाणु ये पुद्गल-द्रव्य के चार भेद कहे गए हैं ।

स्कन्ध के विविध रूप—

19 खध सयलसमत्थ तस्स दु अद्ध भणति देसो त्ति ।
अद्धद्ध च पदेसो परमाणू चेव अविभागी ॥

(पञ्चा० 75)

—सभी परमाणुओं से मिश्रित पिण्ड 'स्कन्ध' कहलाता है, और स्कन्ध से आधा 'स्कन्धदेश', उससे भी आधा 'स्कन्धप्रदेश' और अविभागी अंश को 'परमाणु' कहा गया है ।

20 भूपव्वदमादीया भणिदा अदिथूलथूलमिदि खधा ।
थूला इदि विण्णेया सप्पो-जल-तेलमादीया ॥

(नियमसार 22)

—पृथ्वी, पर्वत आदि प्रथम अति स्थूलस्थूल-स्कन्ध कहे गए हैं और घी, जल, तेल आदि दूसरे स्थूल-स्कन्ध हैं, यह जानना चाहिए ।

21. छायातवमादीया थूलेदर खदमिदि वियाणाहि ।
सुहुमथूलेदि भणिदा खधा चउरक्खविसया य ॥

(नियमसार 23)

—छाया, धूप आदि तीसरे प्रकार के स्थूल-सूक्ष्म-स्कन्ध हैं, और चार इन्द्रियों के विषयभूत स्कन्ध चौथे प्रकार के सूक्ष्म-स्थूल कहे गए हैं ।

22 सुहुमा हवंति खंधा पाओग्गा कम्मवग्गणस्स पुणो ।
तव्विवरीदा खधा अदिसुहुमा इदि परूवेंति ॥

(नियमसार 24)

—पुन कर्म-वर्गणा के योग्य स्कन्ध पाँचवें प्रकार के अर्थात् सूक्ष्म होते है । उनके विपरीत कर्मवर्गणा के अयोग्य स्कन्ध छठवें—अति-सूक्ष्म होते हैं, ऐसा सर्वज्ञो ने कहा है ।

23 धादुचदुक्कस्स पुणो ज हेदू कारण ति त णेयो।
खधाण अवसाणो णादव्वो कज्जपरमाणू ॥
(नियमसार 25)

—पुन॰ धातु-चतुष्क (पृथ्वी, जल, तेज और वायु) का जो कारण है, वही परमाणु है, ऐसा जानना। स्कन्धो के अवसान को कार्य-परमाणु जानना चाहिए।

प्रकारान्तर से परमाणु का लक्षण—

24 सव्वेसिं खधाण जो अंतो त वियाण परमाणू।
सो सस्सदो असद्दो एक्को अविभागी मुत्तिभवो ॥
(पञ्चा॰ 77)

—सर्व स्कन्धो का जो अन्तिम भाग होता है, उसे ही परमाणु जानो। वह अविभागी, एक, शाश्वत, मूर्तिप्रभव (मूर्त रूप से उत्पन्न होनेवाला) और अशब्द है।

धर्म-द्रव्य का का स्वरूप—

25 उदय जह मच्छाण गमणाणुग्गहकर हवदि लोए।
तह जीवपोग्गलाण धम्म दव्व वियाणाहि ॥
(पञ्चा॰ 85)

—जिस प्रकार जगत् मे पानी मछलियो के लिए गमन मे अनुग्रह करता है, उसी प्रकार धर्मद्रव्य जीव-पुदगलो को गमन करने मे अनुगह करता है (निमित्तभूत होता है) ऐसा जानो।

अधर्म-द्रव्य का स्वरूप—

26 जह हवदि धम्मदव्व तह त जाणेह दव्वमधमक्ख।
ठिदिकिरियाजुत्ताण कारणभूद तु पुढवोव ॥
(पञ्चा॰ 86)

—जिस प्रकार धर्मद्रव्य है, उसी प्रकार अधर्म-नाम का द्रव्य भी जानो, परन्तु वह (गतिक्रियायुक्त को कारणभूत होने के वदले) स्थिति-क्रियायुक्त को पृथ्वी की भाँति कारणभूत है।

धर्म-अधर्म अस्तिकायो की विशेषताएँ—

27 जादो अलोगलोगो जेसिं सब्भावदो य गमणठिदी।
दो वि य मया विभत्ता अविभत्ता लोयमेत्ता य॥
(पञ्चा० 87)

—(जीव-पुद्गल की) गति-स्थिति तथा अलोक और लोक का विभाग, उन दो द्रव्यो के सद्भाव से होता है और वे दोनो विभक्त, अविभक्त और लोक प्रमाण कहे गए है।

28 ण य गच्छदि धम्मत्थी गमण ण करेदि अण्णदवियस्स।
हवदि गदिस्स य पसरो जीवाण पोग्गलाण च॥
(पञ्चा० 88)

—धर्मास्तिकाय गमन नही करता और अन्य द्रव्य को गमन नही कराता। वह जीवो तथा पुद्गलो को (गतिपरिणाम मे आश्रयमात्र रूप होने मे) गति का उदासीन प्रसारक है।

आकाश-अस्तिकाय का स्वरूप—

29. सव्वेसिं जीवाण सेसाण तह य पोग्गलाण च।
ज देदि विवरमखिल त लोगे हवदि आगास॥
(पञ्चा० 90)

—लोक मे जीवो को और पुद्गलो को तथा शेष समस्त द्रव्यो को जो सम्पूर्ण अवकाश देता है, वही आकाश है।

काल-द्रव्य का स्वभाव—

30 कालो परिणामभवो परिणामो दव्वकालसभूदो।
दोण्ह एस सहावो कालो खणभगुरो णियदो॥
(पञ्चा० 100)

—काल परिणाम से उत्पन्न होता है (अर्थात् व्यवहारकाल का माप जीव-पुद्गलो के परिणाम द्वारा होता है)। परिणाम द्रव्यकाल से उत्पन्न होता है। यह, दोनो का स्वभाव है। काल क्षणभगुर तथा नित्य है।

आत्मा का स्वरूप-वर्णन

शरीर एवं जीव एक नहीं—

31 ववहारणओ भासदि जीवो देहो य हवदि खलु एक्को।
णदु णिच्छयस्स जीवो देहो य कदावि एक्कट्ठो॥

(समयसार 27)

—व्यवहार-नय कहता है कि जीव और देह वस्तुत एक हैं और निश्चय नय के अभिप्राय के अनुसार तो जीव और देह कभी एक पदार्थ नही हैं।

जीव का स्वरूप—

32 अरसमरूवमगध अव्वत्त चेदणागुणमसद्द।
जाण अलिगग्गहण जीवमणिद्दिट्ठसठाण॥

(समयसार 49)

—जो रसरहित है, रूपरहित है, गन्धरहित है, इन्द्रियो के अगोचर है, चेतना-गुण से युक्त है, शब्दरहित है, किसी चिह्न या इन्द्रिय द्वारा जिसका ग्रहण नही होता और जिसका आकार वताया नही जा सकता, उसे जीव (आत्मा) जानो।

ज्ञानी जीव के भाव ज्ञानमय ही होते है—

33 कणयमया भावादो जायते कुडलादयो भावा।
अयमयया भावादो जह जायते दु कडयादी॥

अण्णाणमया भावा अणाणिणो बहुविहा वि जायते ।
णाणिस्स दु णाणमया सव्वे भावा तहा होंति ॥
(समयसार 130, 131)

—जिस प्रकार स्वर्णमय भाव से कुण्डल आदि भाव उत्पन्न होते हैं तथा लोहमय भाव से कडा आदि भाव उत्पन्न होते हैं, इसी प्रकार अज्ञानी के अनेक प्रकार के अज्ञानमय भाव उत्पन्न होते हैं तथा ज्ञानी के समस्त ज्ञानमय भाव होते हैं।

शुभ एवं अशुभ दोनो ही भाव बन्ध के कारण हैं—

34 सोवण्णिय पि णियल वधदि कालायस पि जह पुरिस ।
बधदि एव जीव सुहमसुह वा कद कम्म ॥
(समयसार 146)

—जिस प्रकार सोने की बेडी भी पुरुष को बाँधती है और लोहे की बेडी भी बाँधती है, उसी प्रकार शुभ-अशुभ किया हुआ कर्म भी जीव को बाँधता है अर्थात् शुभ एव अशुभ दोनो ही बन्ध के कारण हैं।

राग ही बन्ध का मूल कारण—

35 रत्तो बधदि कम्म मुचदि जीवो विरागसपण्णो ।
एसो जिणोवदेशो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज ॥
(समयसार 150)

—रागी जीव कर्मों को बाँधता है और विरागी जीव कर्मों से छूटता है ऐसा जिनेन्द्र का उपदेश है। इसलिए हे भव्य, तू कर्मों मे राग मत कर।

आत्मा का पुद्गलो क साथ कोई सम्बन्ध नहीं—

36 जह को वि णरो जपदि अम्हाण गामविसयणयररट्ठ ।
ण य होंति ताणि तस्स दु भणदि य मोहेण सो अप्पा ॥
(समयसार 325)

—जिस प्रकार कोई पुरुष यह कहे कि यह ग्राम, जनपद, नगर एव राष्ट्र हमारा है। (क्या उसका यह कथन उचित है ?) नही, वे वस्तुत उसके नही है। तथापि वह आत्म-मोहवश होकर ही ऐसा कहता है।

37 एमेव मिच्छदिट्ठी णाणी णिस्ससय हवदि एसो।
जो परदव्व मम इदि जाणतो अप्पय कुणदि॥

(समयसार 326)

—जो ज्ञानी 'परद्रव्य मेरा है' यह समझता हुआ परद्रव्य को निजरूप कर लेता है, वह ज्ञानी नि सन्देह ही मिथ्यादृष्टि (अज्ञानी) है।

38 तम्हा ण मे त्ति णच्चा दोण्ह एदाण कत्तिववसाओ।
परदव्वे जाणतो जाणेज्जा दिट्ठिरहिदाण॥

(समयसार 327)

—इसलिए 'ये परद्रव्य मेरे नही है' यह जानकर लोक और श्रमण इन दोनो के परद्रव्य मे कर्तृत्व के व्यवसाय को जानते हुए समझो कि यह व्यवसाय (विचार) मिथ्यादृष्टियो (अज्ञानियो) का ही है, सम्यग्दृष्टियो का नही।

मिथ्यादृष्टियो की अज्ञानता—

39 पासडिय लिंगेसु व गिहिलिंगेसु व बहुप्पयारेसु।
कुव्वति जे ममत्त तेहि ण णाद समयसार॥

(समयसार 413)

—जो लोग बहुत प्रकार के साधु-लिंगो मे अथवा गृहस्थ-लिंगो मे ममत्व करते हैं, उन्होने समयसार (अर्थात् शुद्धात्म-स्वरूप) को समझा ही नही।

परिशिष्ट-3

कुन्दकुन्द-प्रकीर्णक

महाभ्रष्ट कौन ?—

1 जे दसणेसु भट्टा णाणे भट्टा चरित्तभट्टा य।
एदे भट्टविभट्टा सेस पि जण विणासति ॥

(दर्शनपाहुड 8)

—जो मनुष्य दर्शन से भ्रष्ट हैं, ज्ञान से भ्रष्ट हैं और चारित्र से भ्रष्ट हैं वे भ्रष्टो मे भी भ्रष्ट हैं। वे स्वय तो भ्रष्ट हैं ही, अन्य जनो को भी भ्रष्ट करते हैं।

संयम-शुद्धि का सरल-मार्ग—

2 इरियाभासा एसणा जा सा आदाण चेव णिक्खेवो।
सजमसोहिणिमित्ते खति जिणा पचसमिदीओ ॥

(चारित्रपाहुड 37)

—ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेपण तथा प्रतिष्ठापन ये पाँच समितियाँ सयम की शुद्धि के लिए जिनेन्द्र ने कही हैं।

सम्यग्ज्ञान का अधिकारी—

3 णाण पुरिसस्स हवदि लहदि सुपुरिसो वि विणयसजुत्तो।
णाणेण लहदि लक्ख लक्खतो मोक्खमग्गस्स ॥

(बोधपाहुड 21)

—ज्ञान पुरुष अर्थात् आत्मा मे होता है और उसे विनयी मनुष्य ही प्राप्त कर पाता है। ज्ञान द्वारा यह जीव मोक्षमार्ग का चिन्तन करता हुआ लक्ष्य को प्राप्त करता है।

जिनदीक्षा का लक्षण—

4 सत्तूमित्ते य समा पससणिदाअलद्धिलद्धिसमा।
तणकणए समभावा पव्वज्जा एरिसा भणिया॥

(बोधपाहुड 46)

—जो शत्रु और मित्र, प्रशसा और निन्दा, हानि और लाभ, तथा तृण और स्वर्ण मे समान भाव रखती है, वह जिनदीक्षा कही गई है।

कुन्दकुन्द की गर्वहीनता—

5 सद्दवियारो हूओ भासासुत्तेसु ज जिणे कहिय।
सो तह कहिय णाय सीसेण य भद्दबाहुस्स॥

(बोधपाहुड 60)

—शब्द-विकार से उत्पन्न हुए भाषासूत्रो मे जिनेन्द्रदेव ने जो कुछ भी कहा है तथा भद्रबाहु के शिष्य ने जिसे जाना है, वही यहाँ कहा गया है।

संसार-भ्रमण मे जीव की दशा—

6 भवसायरे अणते छिण्णुज्झियकेसणहरणालट्ठी।
पुजेइ जइ कोवि जए हवदि य गिरिसमधिया रासी॥

(भावपाहुड 20)

—हे जीव! इस अनन्त ससार-सागर मे तुम्हारे कटे और छोड़े हुए केश, नख, वाल और हड्डी को यदि कोई देव इकट्ठा करे तो उसकी राशि मेरुपर्वत से भी ऊँची हो जाय।

मानव-शरीर असख्यात रोगो का घर—

7 एक्केक्कगुलिवाही छण्णवदी होति जाणमणुयाण।
अवसेसे य सरीरे रोया भण कित्तिया भणिया॥
(भावपाहुड 37)

—मनुष्य-शरीर के एक-एक अगुल-प्रदेश मे जब छियानवे-छियानवे रोग होते हैं, तब शेष समस्त शरीर मे कितने-कितने रोग कहे जा सकते हैं, हे जीव, तू यह जान।

अष्टकर्मरहित आत्मा ही परमात्मा है—

8 णाणी सिव परमेट्ठी सव्वण्हू विण्हु चउमुहो बुद्धो।
अप्पो वि य परमप्पो कम्मविमुक्को य होइ फुड॥
(भावपाहुड 150)

—यह आत्मा कर्मो से विमुक्त होने पर स्पष्ट ही परमात्मा हो जाता है और ज्ञानी, शिव, परमेष्ठी, सर्वज्ञ, विष्णु, चतुर्मुख तथा बुद्ध कहा जाने लगता है।

सम्यग्दृष्टि-जीव कषायादि से अलिप्त रहता है—

9 जह सलिलेण ण लिप्पइ कमलिणिपत्त सहावपयडीए।
तह भावेण ण लिप्पइ कसायविसएहिं सप्पुरिसो॥
(भावपाहुड 153)

—जस प्रकार कमलिनी का पत्र स्वभाव से ही जल से लिप्त नही होता, उसी प्रकार सत्पुरुष-सम्यग्दृष्टि जीव, भाव के द्वारा कपाय और विपयो से लिप्त नही होता है।

सम्यग्ज्ञान का रहस्य—

10 ज मया दिस्सदे रूव तण्ण जाणादि सव्वहा।
जाणग दिस्सदे णत तम्हा जपेमि केण ह॥
(मोक्षपाहुड 29)

—जो रूप मेरे द्वारा देखा जाना है, वह विल्कुल नही जानता और जो जानता है वह दिखाई नही देता, तव मैं किसके साथ वातें करूँ ?

कूट-पद—

11 तिहि तिण्णि धरवि णिच्च तियरहिओ तह तिएणपरियरिओ।
दो दो सविप्पमुक्को परमप्पा झायए जोई।।
(मोक्ष० 44)

—तीन के द्वारा तीन को धारण कर, तीन मे रहित तथा तीन मे सहित और दो दोषो से मुक्त रहने वाला योगी निरन्तर ही परमात्मा का ध्यान करता है।

विशेष—यह एक कूटपद है। इसकी विशेषता यह होती है कि उसमे सूत्रशैली या सकेतशैली का प्रयोग किया जाता है और उसका अर्थ जानकार लोग ही कर सकते हैं। कुन्दकुन्द की इस शैली का प्रभाव हिन्दी के कवि सूरदास पर स्पष्ट रूपेण देखा जा सकता है। इस पद का स्पष्टीकरण इस प्रकार होगा—

तीन अर्थात् मन, वचन एव काय के द्वारा, तीन अर्थात् वर्षा, आतप एव शीत योग को धारणकर, दीक्षाकाल से निरन्तर ही तीन अर्थात् माया, मिथ्यात्व एव निदानरूप शल्यो से दूर रहकर, तीन अर्थात् रत्नत्रय से युक्त होकर, दो अर्थात् राग-द्वेष से रहित होकर, योगी परमात्मा अर्थात् शुद्धस्वभाव रूप निज-आत्मा का ध्यान करे।

ज्ञान एवं तप का अनिवार्य सम्बन्ध—

12. तवरहिय ज णाण णाणविजुत्तो तवो वि अकयत्थो।
तम्हा णाणतवेण सजुत्तो लहइ णिव्वाण।।
(मोक्ष० 59)

—जो ज्ञान तप से रहित है वह व्यर्थ है और जो तप ज्ञान से रहित है

वह भी व्यर्थ है, क्योकि ज्ञान और तप से युक्त पुरुष ही निर्वाण को प्राप्त कर सकता है।

सम्यक्चारित्र-प्राप्ति के साधन—

13 णिदाए य पससाए दुक्खे य सुहएसु य।
सत्तूण चेव वघूण चारित्त समभावदो॥

(मोक्ष० 72)

—निन्दा और प्रशसा, दु ख और सुख तथा शत्रु और मित्र मे समभाव से ही चारित्र होता है।

कुमार्गगामी-साधक नरकवास प्राप्त करता है—

14. चोराण मिच्छवाण य जुद्ध विवाद च तिव्वकम्मेहि।
जतेण दिव्वमाणो गच्छदि लिगी णरयवास॥

(लिंगपाहुड 10)

—जो लिंगी साधक चोरो तथा झूठ बोलने वालो के बीच युद्ध और विवाद को कराता है तथा तीव्र कर्म अर्थात् खरकर्म (अधिक हिंसा वाले कार्यों) और यन्त्र अर्थात् चौपड आदि से क्रीडा करता है वह नरकवास को प्राप्त होता है।

मायाचारी मुनि पशु के समान होता है—

15. कदप्पाइय वट्टइ करमाणो भोयणेसु रसगिद्धि।
माई लिंगविवाई तिरिक्खजोणी ण सो समणो॥

(लिंगपाहुड 12)

—जो पुरुष मुनिवेषी होकर भी कन्दर्प आदि कुत्सित भावनाएँ रखता है तथा भोजन मे रस सम्बन्धी लोलुपता को धारण करता है वह मायाचारी है, तथा मुनिलिंग को नष्ट करने वाला पशु है, श्रमण-मुनि नही।

सम्यग्ज्ञान से जीव विशुद्ध हो जाता है—

16 जह कचण विसुद्ध धम्मइय खडियलवणलेवेण।
तह जीवो वि विसुद्ध णाणविसलिलेण विमलेण ।।
(शीलपाहुड 9)

—जिस प्रकार सुहागे और नमक के लेप से युक्त कर फूंका गया स्वर्ण विशुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार ज्ञानरूपी निर्मल जल से यह जीव भी विशुद्ध हो जाता है।

श्रुतवान् के लिए शीलवान् होना आवश्यक—

17 वायरणछदवइसेसियववहारणायसत्थेसु।
वेदेऊण सुदेसु य तेसु सुय उत्तम सील ।।
(शील० 16)

—कितने ही लोग व्याकरण, छन्द, वैशेषिक, व्यवहार—गणित तथा न्यायशास्त्रो को जानकर श्रुत के धारी बन जाते हैं, परन्तु उनका श्रुत तभी यथार्थ श्रुत होगा, जबकि उनमे उत्तमशील भी हो।

तपस्वी के लिए भी शीलवान् होना आवश्यक—

18 उदधी व रदणभरिदो तवविणयसीलदाणरयणाण।
सोहे तोय ससीलो णिव्वाणमणुत्तर पत्तो।।
(शील० 28)

—जिस प्रकार समुद्र रत्नो से भरा होता है तो भी वह केवल तोय अर्थात् जल से ही शोभा देता है। उसी प्रकार यह जीव भी तप, विनय-शील एव दान आदि रत्नो से युक्त है, तो भी वह शीलयुक्त होकर ही सर्वोत्कृष्ट निर्वाण को प्राप्त होता है।

चारित्र ही सच्चा धर्म है—

19 चारित्त खलु धम्मो धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठो।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हु समो ।।
(प्रवचनसार 1/7)

—चारित्र ही वास्तव मे धर्म है और धर्म से ही साम्यभाव की उत्पत्ति होती है, ऐसा (शास्त्रो मे) कहा गया है। साम्य ही मोह-क्षोभ रहित आत्मा का परिणाम (भाव) है।

आत्मा के शुद्ध एवं शुभ भावो का फल—

20 धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्धसपयोगजुदो।
पावदि णिव्वाणसुह सुहोवजुत्तो व सग्गसुह ॥
(प्रवचनसार 1/11)

—धर्म से परिणमित स्वरूप वाला आत्मा यदि शुद्ध-उपयोग मे युक्त हो, तो मोक्ष-सुख को प्राप्त करता है और यदि शुभोपयोग वाला हो तो स्वर्ग के सुख को (बन्ध को) प्राप्त करता है।

अतीन्द्रिय-ज्ञान का स्वरूप—

21 अपदेस सपदेस मुत्तममुत्त च पज्जयमजाद।
पलय गय च जाणदि त णाणमदिंदिय भणिय ॥
(प्रवचन० 1/41)

—जो अप्रदेश को, सप्रदेश को, मूर्त को और अमूर्त को तथा अनुत्पन्न और नष्ट पर्याय को जानता है, वह ज्ञान अतीन्द्रिय कहा गया है।

सम्यग्दर्शन के बिना धर्म का लाभ नहीं—

22 सत्तासबद्धे दे सविसेसे जो हि णेव सामण्णे।
सद्दहदि ण सो समणो तत्तो धम्मो ण सभवदि ॥
(प्रवचन० 1/91)

—जो श्रमणावस्था मे इन सत्ता-युक्त सविशेष पदार्थों की श्रद्धा नही करता, वह श्रमण नही है। उससे धर्म का उद्भव नहीं होता।

द्रव्य का लक्षण—

23 अपरिच्चत्तसहावेणुप्पादव्वयधुवत्तसबद्ध।
गुणव च सपज्जाय ज त दव्व ति वुच्चति ॥
(प्रवचन० 2/3)

—स्वभाव को छोड़े विना जो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-सयुक्त है तथा गुण-युक्त और पर्याय सहित है, उसे 'द्रव्य' कहते हैं।

आत्मा का शरीर नहीं होता—

24 ओरालियो य देहो वेउव्विओ य तेजइओ।
आहारय कम्मइ ते पुग्गलदव्वप्पगा सव्वे।
(प्रवचनसार 2/79)

—औदारिक शरीर, वैक्रियक शरीर, तैजस शरीर, आहारक शरीर और कार्मण शरीर ये सब पुद्गलद्रव्यात्मक है।

द्रव्यवन्ध भाववन्धपूर्वक होता है—

25 सपदेसो सो अप्पा तेसु पदेसेसु पुग्गला काया।
पविसति जहाजोग्ग चिट्ठति य जति वज्झति।।
(प्रवचन० 2/86)

—वह आत्मा सप्रदेश है, उन प्रदेशो मे पुद्गलसमूह प्रवेश करते हैं, यथायोग्य रहते है, जाते हैं, और वँधते हैं।

ममकार के त्याग के बिना सन्मार्ग की प्राप्ति नहीं—

26 ण चयदि जो दु ममत्ति अह ममेद ति देहदविणेसु।
सो सामण्ण चत्ता पडिवण्णो होदि उम्मग्ग।।
(प्रवचन० 2/98)

—जो देह-धनादिक मे 'मैं यह हूँ और यह मेरा है' ऐसी ममता को नही छोडता, वह श्रमणत्व को छोडकर उन्माग का आश्रय लेता है।

शुद्ध-भाव से शुद्धात्मा का लाभ—

27 णाह होमि परेसिं ण मे परे सति णाणमहमेक्को।
इदि जो झायदि झाणे सो अप्पाण हवदि झादा।।
(प्रवचन० 2/99)

—मैं पर का नही हूँ, पर मेरे नही हैं, मैं एक ज्ञान हूँ, इस प्रकार जो ध्यान करता है, वह आत्मा ध्यानकाल मे ध्याता होता है।

श्रामण्य का बाह्य-चिह्न—

28 जधजादरूवजाद उप्पाडिदकेसमसुग सुद्ध ।
रहिद हिंसादीदो अप्पडिकम्म हवदि लिग ॥
(प्रवचन० 3/5)

—जन्म-समय के रूप जैसे रूपवाला, सिर और दाढी-मूँछ के बालो का लोच किया हुआ शुद्ध (अकिंचन), हिंसादि से रहित और प्रतिकर्म (शारीरिक शृगार) से रहित—लिग (श्रामण्य का बहिरग चिह्न) है।

सम्यग्दृष्टि के गुण—

29 मयमूढमणायदण सकाइवसणभयमईयार।
जेसि चउदालेदे ण सनि ते होंति सद्दिट्ठी ॥
(रयणसार 7)

—जिनके आठ प्रकार के मद (अहकार), तीन मूढताएँ (लोक-रूढियाँ), छह अनायतन (कुससर्ग), शकादिक आठ दोष, सात व्यसन (कुटेव), मात तरह के भय और नियम-व्रत आदि के उल्लघन स्वरूप पांच प्रकार के अतिचार कुल मिलाकर चवालीम दूषण नही होते, वे मम्यग्दृष्टि होते हैं।

सुपात्र-दान का फल—

30 खेत्तविसेसे काले ववियि सुवीय फल जहा विउल।
होइ तहा त जाणहि पत्तविसेसेसु दाणफल ॥
(रयण० 17)

—अर्थात् जिस प्रकार उचित काल मे उत्तम क्षेत्र मे बोये गये अच्छे बीज का बहुत अच्छा फल मिलता है, उमी प्रकार उत्तम पात्र (मुनि) मे दिए गए दान का फल भी उत्तम होना है।

सुपात्र-दान का फल

31 मादु-पिदु-पुत्त-मित्त कलत्त-धणधण्ण-वत्थु-वाहण-विहव ।
ससारसारसोक्ख सव्व जाणउ सुपत्तदाणफल ।।
(रयण० 18)

—माता-पिता, मित्र, पत्नी, धन-धान्य, घर, वाहन (सवारी) आदि वैभव और ससार का उत्तम सुख, ये सभी सुपात्र-दान के फल से प्राप्त होते हैं ।

सुपात्र-दान का फल—

32 सत्तगरज्ज-णव-णिहि-भडार-छडग वल-चउद्दह रयण ।
छण्णवदि सहस्सेत्थि-विहव जाणउ सुपत्तदाणफल ।।
(रयण० 19)

— उत्तम पात्र को दान देने से राजा, मन्त्री, मित्र, कोष, देश, किला, सेना (सप्ताग राज्य का पद), नव-निधि (काल, महाकाल, पाडु, मानव, शख, पद्म, नैसर्प, पिंगल, मणिरत्न), छह अगो से युक्त सेना (हाथी, घोडा, रथ, पैदल आदि), चौदह रत्न (पवनजय अश्व, विजयगिरि हस्ती, भद्रमुख गृहपति, कामवृष्टि, अयोद्ध सेनापति, सुभद्रा पत्नी, बुद्धिसमुद्र पुरोहित ये सात जीवरत्न और सात अजीव रत्न—छत्र, तलवार, दण्ड, चक्र, काकिणी-रत्न, चिन्तामणि और चर्मरत्न) एव छियानवे हजार स्त्रियो के वैभव का फल प्राप्त होता है ।

सुपात्र-दान का फल—

33 सुकुल-सुरूव-सुलक्खण-सुमइ-सुसिक्खा-सुसील-चारित्त ।
सुहलेस्स सुहणाम सुहसाद सुपत्तदाणफल ।।
(रयण० 20)

—उत्तम कुल, उत्तम रूप, उत्तम लक्षण, उत्तम वुद्धि, उत्तम शिक्षा, भद्र प्रकृति, अच्छे गुण, उत्तम चारित्र, अच्छी प्रवृत्ति, परिणामो की विशुद्धता और उत्तम सुख, ये सभी सुपात्रदान के फल हैं ।

सुपात्र को आहार देने का फल—

34 जो मुणिभुत्तविसेस भुजइ सो भुजए जिणुवदिट्ठ ।
ससार-सार-सोक्ख कमसो णिव्वाणवरसोक्ख ॥
(रयण० 21)

—जो व्यक्ति मुनि के भलीभाँति आहार कर लेने के वाद स्वय भोजन करता है, वह ससार के उत्तम सुख और क्रम से मोक्ष के उत्तम सुख को भी भोगता है, ऐसा जिनेन्द्रदेव का उपदेश है ।

मन्त्र-तन्त्र मे मोक्ष-प्राप्ति सम्भव नहीं—

35. जत-मत-तत परिचरिय पक्खवायपियवयण ।
पडुच्च पचमयाले भरहे दाण ण किं पि मोक्खस्स ॥
(रयण० 27)

—जो इस पचम-काल मे यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र, सेवा, सिद्धि या प्रिय-वचनो से चमत्कार तथा गहरा विश्वास प्राप्त कर किसी भी तरह का दान देता है, वह मोक्ष का कारण नही है ।

पूर्वजन्म के कर्म-फल—

36 दाणीण दालिद्द लोहीण किं हवेइ महसिरिय ।
उहयाण पुव्वज्जियकम्मफल जाव होइ थिर ॥
(रयण० 28)

—दानी पुरुष निर्धन क्यो देखे जाते है और लोभियो के महान् ऐश्वर्य क्यो होता है ? इस विचित्रता का कारण पूर्व-जन्म मे किये हुए कर्मो का फल ही है । जव तक पूर्व-जन्म के अच्छे-बुरे कर्म अपना फल देकर विखर नही जाते, जव तक अच्छे-वुरे कर्मो का फल वना रहता है ।

भावना रहित चारित्र व्यर्थ है—

37 पत्तविणा दाण य सुपुत्तविणा वहुधण महाखेत्त ।
चित्तविणा वयगुणचारित्त णिक्कारण जाणे ॥
(रयण० 30)

—जिस प्रकार सुपुत्र के विना विपुल धन और बडे-बडे खेतो का होना व्यर्थ है, तथा अच्छे पात्र के विना दान देना निरर्थक है उसी प्रकार भावो के विना व्रत, गुण और चारित्र का पालन भी निष्फल है।

हिंसक स्वभाव वाले धर्म-नाशक हैं—

38 वाणर-गद्दह-साण-गय-वग्घ-वराह-कराह।
पक्खि-जलूय-सहाव णर जिणवरधम्म-विणासु॥
(रयण० 42)

—जो मनुष्य वन्दर, गधा, कुत्ता, हाथी, बाघ, सुअर, कछुवा और पक्षी तथा जोक के स्वभाव वाले होते हैं, वे जिनेन्द्रदेव के धर्म का विनाश करते हैं।

गुरु-भक्ति के बिना लक्ष्य-प्राप्ति असम्भव—

39 रज्ज पहाणहीण पदिहीण देसगामरट्ठ वल।
गुरुभत्तिहीण-सिस्साणुट्ठाण णस्सदे सव्व॥
(रयण० 72)

—जैसे राजा के विना राज्य और सेनापति के विना देश, ग्राम, राष्ट्र, सैन्य सुरक्षित नही रह पाते, वैसे ही गुरु की भक्ति के विना शिष्यो के अनुष्ठान सफल नही होते।

श्रमणो के लिए दूषण—

40 जोइसवेज्जामतोवजीवण वायवस्स ववहार।
धणधण्णपडिग्गहण समणाण दूसण होइ॥
(रयण० 96)

—ज्योतिष-विद्या और मन्त्र-विद्या द्वारा आजीविका चलाना तथा भूत-प्रेत का प्रदर्शन कर धन-धान्यादि लेना ये सभी श्रमणो के लिए दूषण कहे गये हैं।

इन्द्रिय-सुख की आकाक्षा घातक है—

41 किंपायफल पक्क विसमिस्सिदमोदमिव चारुसुह।
जिब्भसुह दिट्ठिपिय जह तह जाणक्खसोक्ख वि ॥
(रयण० 117)

—अर्थात् इन्द्रियो के सुख इन्द्रायण के फल तथा विषमिश्रित मोदक की भाँति होते हैं, जो बाहर से सुन्दर और भीतर से विषयुक्त होने के कारण घातक होते हैं।

सम्यग्दर्शन का महत्त्व—

42 मिहिरो महधयार मरुदो मेह महावण दाहो।
वज्जो गिरिं जहा विणसिज्जइ सम्म तहा कम्म ॥
(रयण० 146)

—सम्यग्दर्शन अत्यन्त सघन अज्ञान-अन्धकार को उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जिस प्रकार सूर्य बड़े भारी अँधेरे को, वायु मेघ को, अग्नि महावन को और वज्र पर्वत को नष्ट कर देता है।

सम्यग्दर्शन का महत्त्व—

43 कामदुहि कप्पतरु चिंतारयण रसायण परम।
लद्धो भुजइ सोक्ख ज इच्छिय जाण तह सम्म ॥
(रयण० 151)

—जैसे कामधेनु, कल्पवृक्ष, चिन्तामणि रत्न और श्रेष्ठ रसायन मन-वाछित फल को प्रदान करते हैं, वैसे ही सम्यग्दर्शन से अभिलषित सुख की प्राप्ति होती है।

सम्यग्दर्शन से ही आत्मा निर्मल होती है—

44 कनकफलभरियणिम्मल्ल जल ववगय कालिया सुवण्ण च।
मलरहिय सम्मजुत्तो भव्ववरो लहइ लहु मोक्ख ॥
(रयण० 55)

—जिस प्रकार निर्मली डालने से पानी निर्मल हो जाता है, अग्नि और सुहाग के सयोग से स्वर्ण शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार निर्दोष सम्यग्दर्शन से युक्त भव्य जीव शीघ्र ही निर्मल आत्मा को अर्थात् मुक्ति को प्राप्त कर लेता है।

भव्यजन-प्रबोध—

45 पढिएण वि किं कीरइ किंवा सुणिएण भावरहिएण।
भावो कारणभूदो सायारणयारभूदाण ॥
(भावपाहुड 66)

—हे भव्य, भावना रहित होकर उपदेश-श्रवण अथवा शास्त्रपठन से क्या लाभ ? क्योंकि भावना ही तो श्रावक एव साधु होने का आधार है।

46 भजसु इदियसेण भजसु मणमक्कड पयत्तेण।
मा जणरजणकरण वाहिरवयवेस त कुणसु ॥
(भाव० 90)

—इन्द्रियरूपी सेना को छिन्न-भिन्न करो, मनरूपी बन्दर को प्रयत्न-पूर्वक रोको और हे जीव, जन-सामान्य के मनोरजन मात्र के लिए व्रती-साधको के वाह्य-वेश को धारण मत करो।

47 जह पत्थरो ण भिज्जइ परिट्ठिओ दीहकालमुदएण।
तह साहू वि ण भिज्जइ उवसग्गपरीसहेहिंतो ॥ (95)

—जिस प्रकार दीर्घकाल तक जल मे पडा हुआ पत्थर जल के द्वारा टुकडे-टुकडे नही किया जाता उसी प्रकार साधु भी उपसर्ग-परीषहो द्वारा शिथिल नही किया जा सकता।

48 उत्थरइ जा ण जरओ रोयग्गी जा ण डहइ देहउडि।
इदियवल त वियलइ ताव तुम कुणहि अप्पहिय ॥(131)

—हे भव्य, जव तक तुझे वृद्धावस्था नहीं पकड लेती, और जव तक रोग रूपी अग्नि देहरूपी कुटिया को नहीं जलाती, तथा जव तक तुम्हारी इन्द्रियो की शक्ति क्षीण नही हो जाती, तब तक तू आत्महित कर ले। ०